# श्री आद्य शंकराचार्य जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र

## आचार्य शङ्कर : एक ऐतिहासिक अध्ययन

आचार्य शङ्कर अपने युग के युवा द्रष्टा, क्रान्तिकारी विचारक, धर्म-संस्थापक, रहस्यदर्शी ऋषि और जीवन सर्जक साधु थे। वैसे तो धर्म, अध्यात्म व साधना में ही उनका जीवन-प्रवाह था, लेकिन कला, साहित्य और दर्शन में भी वे अनूठे और अद्वितीय थे।

आचार्य शङ्कर निश्चित रूप से उस चौराहे पर के सन्त हैं, जहां पीछे से अवैदिक बौद्ध-धर्म की परम्परा आती है, बायें से इस्लाम धर्म का राज-पथ, जहां पीछे से सार्वजनीन आध्यामिक सत्य की क्षीण पगडंडी मिलती है और दायें से मुमुर्षु, विध्वस्त और विच्छिन्न वैदिक हिन्दू-धर्म की राह। आचार्य शङ्कर के सम्पूर्ण मूर्ति को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी पीठ अवैदिक बौद्ध-धर्म और इस्लाम की ओर है और वे पूरी शक्ति, सच्चाई और गति के साथ विध्वस्त हिन्दू-धर्म के पुनरुत्थान की ओर उन्मुख हैं।

### प्राकट्य-काल

आचार्य शङ्कर का प्राकट्य देवमानवों के बीच धर्माचार्य सन्त के रूप में वैशाख शुक्ल तृतीया वि. सं ६८६ में [1] हुआ और उनका पार्थिव शरीर अत्यन्त अल्प समय ( ३२ वर्ष की आयु ) में ही इस संसार से तिरोहित हो गया। आध्यात्मिक युग के धर्माकाश में इनका व्यक्तित्व एक दिव्य नक्षत्र की तरह प्रोद्भासित हुआ, जो आलोक में अपूर्व और अवधि में अल्पायु था। इस्लाम का सबल एवं सस्पर्ध अभियान की लहर भारतीय आध्यात्मिकता के तट से इस समय टकरा ही नहीं रही थी अपितु पूरे वेग से समस्त देश में फैल रही थी। एक विशाल एवं गहरे उद्वेलन में भारतीय धार्मिक जीवन विक्षुब्ध, अस्त-व्यस्त और भावोच्छ्वसित-तरंगायित था। एक ओर अवैदिक बौद्धधर्म की निर्मूल परम्परा, दूसरी ओर इस्लामधर्म की प्रभविष्णुता से आशंका की अस्पष्ट कुहेलिका और इन दोनों के बीच छटपटाती भारतीय वैदिक हिन्दूधर्म की आत्मा—

---

१. विचारकों में आचार्य शङ्कर के जन्म के वर्ष और तिथि के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ प्रचलित हैं। दशनामी संन्यासी-सम्प्रदाय के अधिक मठों में वैशाख शुक्ल पञ्चमी सं ७८८ को आचार्य शङ्कर की जन्मतिथि मनाई जाती है।

युगपुरुष शङ्कर इसी संगम पर धार्मिक परम्परा के पुष्प और आर्य सनातन भविष्य के बीज थे।

आचार्य शङ्कर हिन्दूधर्म की समग्रता को जानने, समझने और प्रयोग करने के जीवन्त प्रतीक थे। आचार्य शङ्कर के आविर्भाव, उनके जीवन, उनकी साधना तथा शिक्षा ने हिन्दूधर्म के भीतर आसन्न कार्य के योग्य शक्ति-संक्रमण किया तथा वैदिक धर्म को अनन्त युगों का स्थायित्व प्रदान कर सुदृढ़भित्ति के ऊपर सुप्रतिष्ठित भी कर दिया। वे हिन्दूधर्म के गौरव गायक थे, दर्शन के सूक्ष्म द्रष्टा थे और धार्मिक परम्परा के कुशल सारथी थे। धर्म की धधकती ज्वाला लेकर, धर्मगुरु की क्रान्तिकारी नीति का सक्रिय पक्ष बनकर तो वे हमारे सामने प्रस्तुत नहीं हो पाते, किन्तु, धार्मिक पुनरुत्थान के लिए जो धर्म, नीति और आध्यात्मिक चेतना आवश्यक है, उसके वे अवश्य वाहक थे। धर्मपरम्परा के सृजन की आन्तरिक क्षमता का पवित्र एवं व्यापक उद्‌बोधनभाव उनके चिन्तन में भरा पड़ा था। उन ३२ वर्षीय युवा संन्यासी के हृदय में वैदिकधर्म के प्रति क्रियाशील उत्कट स्नेह के पीछे उनकी प्रचण्ड बौद्धिकता ही सक्रिय नहीं अपितु आध्यात्मिक हृदय की सप्राण आस्था भी थी।

## जन्म-स्थान

आचार्य शङ्कर केवल साधक ही नहीं, सिद्धाचार्य भी थे। देव-कार्य-साधन हेतु उन्होंने जाग्रत चैतन्य रूप से, देवांश में भारत के सुदूर दक्षिण केरल प्रदेश के आलवाई नदी तट पर अवस्थित कालरी ग्राम में नामपुद्रि अथवा नामपुरी नामक उच्च ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था। यही नामपुद्रि आधुनिक नम्बूदरीपाद ब्राह्मण हैं। शङ्कर के पितामह का नाम विद्याधिराज या विद्याधर था। इनके पिता शास्त्र-सेवी शिव-गुरु थे तथा माता का नाम सती अथवा विशिष्टा देवी था। ये प्रारम्भ में 'पन्निपुर' ग्राम के निवासी थे जिसका उल्लेख 'शशल' ग्राम के नाम से भी मिलता है। पीछे वे लोग कालरी में आकर बस गये थे। इनके जन्मस्थान के विषय में एक अन्य भी मत है। इस मत के अनुसार इनका जन्म तमिल प्रान्त के सुप्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र 'चिदम्बरम्' में हुआ था किन्तु, अनेक कारणों से इतिहासकारों को यह मत मान्य नहीं है। अनेक पुष्ट प्रमाणों के आधार पर अब आचार्य शङ्कर का जन्मस्थान 'कालटी' ही सिद्ध हो चुका है।

## वंश-परिचय

इनके पिता शिवगुरु एक शास्त्र-सेवी धर्मनिष्ठ विद्वान थे। वे अपने पिता के एकमात्र पुत्र थे। अध्ययन-अध्यापन में ही अपना समग्र जीवन

व्यतीत करने की इनकी उत्कट अभिलाषा थी। पिता इन्हें एक सद्‌गृहस्थ के रूप में देखना चाहते थे। अत एव उन्होंने इनकी इच्छा के विरुद्ध वहीं के 'मघपण्डित' नामक एक विद्वान ब्राह्मण की कन्या से विवाह कर दिया। कालान्तर में पिता के निधन के पश्चात् सम्पूर्ण परिवार के निर्वाह का दायित्व शिवगुरु पर आ गया। इनके एक छोटी सी देवोत्तर सम्पत्ति थी। इनकी सीमित आवश्यकताओं की पूर्त्ति इसीसे हो जाती थी। सन्तान के लिए वरद

अब तक शिवगुरु सन्तानहीन थे एकाएक उनके चित्त में पुत्र-मुख देखने की लालसा जाग उठी। अन्ततः द्विज-दम्पत्ति ने वृष पर्वत के देवता भगवान चन्द्रमौलीश्वर शिव की तपस्या को लक्ष्यपूर्त्ति का साधन मान कर उन्हीं की साधना में रम गये। तपस्यारत शिवगुरु ने एक रात स्वप्न में देखा कि ज्योतिर्मय शरीर से भगवान आशुतोष शङ्कर उनसे कह रहे हैं—"मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ, तुम क्या चाहते हो मांगो। शिवगुरु ने भगवान शिव के चरणों में प्रणाम करते हुए विनत भाव से कहा—'प्रभो! मुझे एक दीर्घायु सर्वज्ञ पुत्र दीजिए।' भगवान शिव ने हंसते हुए कहा—'सर्वज्ञ पुत्र चाहो तो वह अल्पायु होगा, दीर्घायु पुत्र चाहो तो वह अल्पज्ञ होगा।' अब तुम्हीं बताओ क्या चाहते हो? धर्मज्ञ शिवगुरु ने अल्पायु किन्तु सर्वज्ञ पुत्र प्राप्ति की कामना प्रकट की। इस पर भगवान शिव ने 'तथास्तु' कहा और द्विजदम्पति को घर लौट जाने की आज्ञा देकर स्वयं तिरोहित हो' गये।" तदनुसार वैशाख शुक्ल तृतीया संवत् ६८६ को भगवान शिव स्वयं आचार्य शङ्कर के रूप में विशिष्टा देवी के गर्भ से अवतीर्ण हुए।

## बाल्य-काल उपनयन

आचार्य शङ्कर एक प्रतिभा-सम्पन्न शिशु थे। बचपन से ही इनकी अलौकिक प्रतिभा एवं मेधा को देखकर शिवगुरु ने अपने मन में निश्चय किया कि पांच वर्ष में ही पुत्र का उपनयन संस्कार कर उसे गुरु-कुल में विद्याध्ययन के लिए भेज देंगे। किन्तु, विधाता को यह स्वीकार न हुआ। थोड़े ही दिनों में शिवगुरु शिव पद में विलीन हो गये। शोकसन्तप्त विशिष्टा देवी पति का दाह-संस्कार सम्पन्न कर अपने एकमात्र शिशु को छाती से चिपकाकर पिता के

१. आनन्द गिरि ने अपने 'शंकरविजय' में लिखा है कि विशिष्टा देवी के पति जब संन्यास लेकर गृहत्याग कर दिया तो उस देवी ने शंकर के चरणों में अपना मन लगाया। उनकी सेवा से संतुष्ट होकर भगवान शंकर ने उन्हें दर्शन दिया तथा उन्हीं के आशीर्वाद से आचार्य शङ्कर का दैवी जन्म हुआ। (परन्तु यह सनातनविरुद्ध परम्परा है।)

आश्रय में चली गयी। किन्तु दिवंगत पति की इच्छा वह भूली नहीं थी। शिशु के पाँच वर्ष पूर्ण होते ही वे पुत्र के साथ अपने घर लौट आयीं।

## शिक्षा-काल

पंचम वर्ष में ही उपनयन संस्कार करा के माँ ने पुत्र को गुरु-कुल भेज दिया। अत्यल्प काल में ही शिष्य की विलक्षण प्रतिभा और विद्यानुराग देखकर गुरु मुग्ध हो गये। अपनी अलौकिक मेधा और विशुद्ध चरित्र से बालक शंकर ने थोड़े ही दिनों में आश्रम में सबों को चमत्कृत कर दिया। उन्हें जो ग्रन्थ पढ़ाया जाता था उसे तो वे अनायास सीख ही लेते थे, साथ ही साथियों के पास बैठकर उनके पाठों को भी अभ्यास कर लेते थे। जो कुछ सुनते थे उन्हें कण्ठाग्र हो जाता था। गुरु के आश्रम में दो वर्ष के भीतर ही बालक शंकर वेद, पुराण, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, न्याय, सांख्य, पातञ्जल, वैशेषिक आदि अनेक शास्त्रों में पारंगत होकर बृहस्पति के समान विद्वान हो गये।

कनकधारा स्तोत्र

आश्रम के नियमानुसार एक दिन आचार्य शङ्कर एक विधवा ब्राह्मणी के घर भिक्षाटन के लिए पहुंचे। ब्राह्मणी परम निर्धन थी। उसके घर में इस दिव्य ब्रह्मचारी को भिक्षा देने के लिए एक मुट्ठी अन्न का नितान्त अभाव था। रोती हुई ब्राह्मणी ने शंकर के हाथों में एक आमला देकर अपनी दुरवस्था का वर्णन किया। उस विधवा की दुखद निर्धनता ने बालक शङ्कर के हृदय पर बड़ी चोट कर गयी। शङ्कर ने वहीं खड़े होकर करुणाविगलित चित्त से दारिद्र्य दुःखहारिणी भगवती विष्णु-प्रिया कमला की मार्मिक एवं प्रशस्त स्तुति की।

बालक शङ्कर के प्रशस्त स्तव से प्रसन्न होकर हरिप्रिया कमला ने कहा, बेटा मैं तुम्हारे मन की बात तो समझ गयी पर, इस ब्राह्मणी ने पूर्व जन्म में ऐसा कुछ सत्कर्म किया ही नहीं जिसके फलस्वरूप इसे धन मिले। प्रत्युत्पन्नमति शङ्कर ने कहा—मातः, अभी तो इस ब्राह्मणी ने मुझे आमला दान में दिया है। बालक की प्रतिभा से प्रसन्न होकर भगवती ने दूसरे दिन उस ब्राह्मणी का घर सोने के आमले से भर दिया। इस छोटी सी घटना से बालक शङ्कर की अलौकिक शक्ति की बात चारों ओर फैल गयी।

अमानवीय प्रतिभा, तीव्र बुद्धि, विलक्षण शक्ति एवं अपूर्व श्रुतिधर गुणों से शङ्कर को अधिक दिनों तक गुरुकुल में नहीं रहना पड़ा। शङ्कर ने बचपन में ही रहस्यों के साथ समस्त विद्यायें अधिगत कर लीं। गुरु ने भी बालक शंकर की प्रतिभा से गौरवान्वित होकर दो वर्ष के बाद ही शंकर को अनेक आशीर्वाद देकर शिक्षा-समावर्त्तन की आज्ञा दे डाली।

## अटल ब्रह्मचर्यव्रती

इधर माता विशिष्टा देवी ने पड़ोस की ही एक सुन्दरी कन्या के साथ शङ्कर के विवाह का निश्चय कर लिया था। गुरुकुल से लौटते ही उन्हों ने यह प्रस्ताव उनके सामने रखा। समझाया—बेटा, अनाश्रमी होकर एक दिन भी समावर्त्तन के बाद रहना शास्त्र विरुद्ध है[1]। विधवा माँ रोई-धोई, समझायी, पर शङ्कर पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे किसी भी स्थिति में विवाह करने के लिए सहमत नहीं हुए। अन्त तक वे अपने संकल्प में दृढ़ एवं अविचल बने रहे। बालक शङ्कर की दृढ़ता और संकल्प शक्ति ने माता को भी अभिभूत कर दिया।

## यशः-ख्याति

अपने घरपर रहकर ही ब्रह्मचारी शङ्कर ने अध्ययन-अध्यापनकार्य प्रारम्भ कर दिया। अनेक प्रतिष्ठित एवं वयोवृद्ध विद्वान्-शास्त्रचर्चा के लिए शङ्कर के पास आते और उनकी शास्त्रीय व्याख्या सुनकर मुग्ध हो जाते थे। क्रमशः बालक शङ्कर का अगाध पाण्डित्य एवं असाधारण प्रतिभा की ख्याति चारों ओर फैल गयी।

एक दिन केरल-नरेश राजशेखर ने तेजस्वी बालक शंकर की ख्याति से मुग्ध होकर उन्हें सादर महल में बुलाने के लिए अपने सचिव को भेजा। त्यागी एवं विरक्त शङ्कर पर इस राज-सम्मान का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने न तो स्वर्णमुद्राओं का ही स्पर्श किया और न राजमहल जाने का ही आमन्त्रण स्वीकार किया। केरलनरेश राजशेखर स्वयं गुणग्राही कवि एवं नाटककार थे। अन्ततः वे स्वयं शङ्कर के दर्शन के लिए कालटी पहुंचे। उन्होंने अपना नाटक शङ्कर को सुनाया और उनकी आलोचना सुनकर विस्मित रह गये।

## मातृ-भक्ति

शङ्कर परम मातृभक्त थे। मातृ-सेवा उनका परम धर्म था। सर्वतोभावेन माता को प्रसन्न देखना उनकी सर्वश्रेष्ठ साधना थी। उनकी माँ धर्मनिष्ठ विशिष्टा देवी प्रतिदिन 'आलवाई' नदी में स्नान करने जाती थी। रास्ते में कुलदेवता विष्णु के मन्दिर में पूजा करके घर लौटती थी। आलवाई नदी शङ्कर के घर से दूर पड़ती थी।

एक समय गर्मी के दिन विशिष्टा देवी नदी-स्नान के लिए गयी थी। बहुत समय बीत जाने पर भी जब विशिष्टा देवी लौटकर घर नहीं आई; तब मातृ-भक्त शङ्कर का चित्त व्याकुल हो उठा। माँ की खोज में वे नदी की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्होंने देखा माँ संज्ञाहीन पड़ी हैं। किसी तरह माँ को उठाकर घर ले

१. अनाश्रमी न तिष्ठेत् क्षणमेकमपि द्विजः। —मनुः।

आये। माँ के इस अपार क्लेश से बालक शङ्कर का हृदय आकुल हो उठा। उन्होंने अपने कुलदेवता विष्णु से प्रार्थना की—'प्रभो, आप सर्वज्ञ हैं। माँ का कष्ट अब मुझ से सहा नहीं जाता, कृपया नदी को मेरे घर के समीप ही ला दीजिए।' मातृभक्त बालक की प्रार्थना सुन ली गयी। आलवाई नदी किनारा काटकर कालटी गाँव के पास पहुंच गयी। लोगों ने आश्चर्य से देखा—नदी की धारा सहसा परिवर्त्तित हो गयी। कुल सात-आठ साल के बालक शङ्कर की इस अलौकिक शक्ति की सूचना केरलनरेश राजशेखर को मिली तो वे विस्मित से रह गये।

एक दिन कुछ दैवज्ञ ब्राह्मण अतिथि के रूप में शंकर के घर आये। आतिथ्य से संतुष्ट होकर उन्होंने शङ्कर की जन्मकुण्डली देखने की इच्छा प्रकट की। कुण्डली देखने पर उन्हें पता चला कि जातक के जन्म-लग्न में अवतार योग है तथा जातक संन्यासी होगा। आयुष्ययोग में उन्होंने बताया कि ८, १६ और २३ वर्ष में मृत्यु योग है। अपनी अल्पायु होने की बात जानकर बालक शंकर ने संन्यास लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया। क्योंकि संन्यास के विना आत्मज्ञान असंभव था और आत्मज्ञान के विना मुक्ति संभव नहीं। ऐसी स्थिति में दिन प्रतिदिन शंकर के हृदय में संन्यास लेने की भावना प्रबलतर होती गयी। एकदिन अपना संकल्प उन्होंने माता से कह सुनाया। प्रस्ताव सुनकर माता रो पड़ी। पुत्र को छाती से लगाकर कहा—'अभी तुम बालक हो, मेरे मरने पर तुम संन्यास ले लेना। माता की इच्छा के सामने निरुपाय शङ्कर एकाग्रचित्त से भगवान की प्रार्थना प्रारम्भ की। एक दिन की विचित्र घटना ने इस बालक शङ्कर के प्रस्ताव को सफल बना दिया।

## बालक शंकर का आतुर संन्यासग्रहण

एक दिन प्रातःकाल अपनी माँ के साथ शङ्कर नदी-स्नान के लिए गये। माता स्नान कर नदी से बाहर आ गयी, पर शङ्कर स्नान करते ही रहे। सहसा शङ्कर के करुण चित्कार ने माँ का ध्यान उधर खींच लिया। माता ने देखा एक विशालकाय मगर ने शङ्कर को पकड़ लिया है। असहाय बालक आत्मरक्षा के लिए छटपटा रहा है। पुत्र को बचाने के लिए माता भी नदी में कूद पड़ी। कुछ स्नानार्थी व्यक्ति भी सहायता में जुट पड़े। पर सारे उद्योग असफल सिद्ध हुए। कितना करुण दृश्य था। बालक प्राणरक्षा के लिए तड़प रहा था और भीमकाय मगर उसे गहरे पानी में खींच रहा था। आर्त्तभाव से शंकर ने कहा—माँ, मेरा अन्तिम काल अब उपस्थित है। संन्यास के विना मेरी मुक्ति नहीं होगी। अभी भी यदि तुम मुझे संन्यास लेने की आज्ञा दे दो तो

संभवतः आतुर संन्यास ग्रहण करने से भी मेरी मुक्ति हो जाय। विवश माँ के सामने 'हाँ' कर देने के सिवा और कोई चारा नहीं था। हाँ कहकर माता मूर्च्छित हो गई। उधर शंकर ने इष्टदेवता का स्मरण कर आतुर संन्यास ग्रहण कर लिया। उन्हें बचाने के लिए कुछ लोग प्राणों की बाजी लगाकर उनका हाथ पकड़ कर खींच रहे थे। इतने में अवसर पाकर कुछ धीवरों ने चारों ओर जाल डाल कर मगर को पकड़ लिया। ग्रामवासियों ने बेहोश माता के साथ तरुण संन्यस्त शङ्कर को घर पहुंचा दिया।

## सद्गुरु की खोज

घर में पहुंच कर शङ्कर ने माता से कहा—'माँ अब तो मैं घर में रह नहीं सकता, क्योंकि संन्यासियों के लिए घर में रहना वर्जित है।' रोती बिलखती माँ ने समझाने का अथक प्रयास किया, परन्तु शङ्कर दृढ़ प्रतिज्ञ थे। उन्होंने माँ को आश्वस्त करते हुए कहा—'माँ मैं आपके अन्तिम काल में अवश्य ही उपस्थित रहूँगा, अभी तो मुझे आशीर्वाद दो कि मेरा संन्यासग्रहण सार्थक एवं सफल हो।' माँ ने भवितव्यता को प्रबल जानकर शङ्कर को घर छोड़ने की आज्ञा दे दी।

अष्टवर्षीय तरुण संन्यासी शङ्कर गुरु की खोज में उत्तर भारत की ओर चल पड़े। महाभाष्य अध्ययन काल उन्होंने गुरु के मुख से सुना था कि स्वयं पतञ्जलि भगवान नर्मदा नदी के किनारे एक सहस्र वर्षों से समाधिस्थ हैं। दूसरे ही दिन शङ्कर ने नर्मदा तटपर अवस्थित किसी अज्ञात गुहा में अखण्ड समाधिस्थ गौड़पादाचार्य के शिष्य गोविन्दाचार्य से अद्वैत वेदान्त की शिक्षा लेने के लिए प्रस्थान किया। मुण्डित शिर, गैरिक वस्त्र, दण्डकमण्डलधारी उस बालक संन्यासी को जो देखता था—विस्मय से अवाक् रह जाता था।

एक दिन भयङ्कर गर्मी से श्लथ होकर शङ्कर एक वृक्ष की छाया में विश्राम कर रहे थे। सहसा उन्होंने देखा कि एक कृष्णसर्प धूप से सन्तप्त मेढ़क के बच्चों की रक्षा अपना फण फैलाकर कर र। । जन्तु-जगत के इस स्वाभाविक वैरत्याग की घटना ने शंकर के हृदय पर विचित्र प्रभाव डाल दिया। उनके हृदय में उस स्थान की पवित्रता जम गई। उन्होंने अपना दृढ़ संकल्प कर लिया कि मैं अपना प्रथम मठ इसी पवित्र स्थान में बनाऊँगा। पीछे उन्हें यह भी पता चला कि यहीं सामने के पर्वत-शिखर पर शृङ्गी ऋषि का पावन स्थान भी है[1]।

---

१. आगे चलकर शङ्कराचार्य शृंगेरी मठ की स्थापना यहीं करेंगे।

## सद्गुरु की प्राप्ति

इस प्रकार महीनों की यात्रा के बाद शंकर ओंकारनाथ पहुंचे। वहां एक गुफा में कई वृद्ध संन्यासियों को देखकर शङ्कर ने उनसे गोविन्द-पाद के सम्बन्ध में अपनी जिज्ञासा प्रकट की। संन्यासियों ने कहा—सामने की गुफा में अज्ञात काल से श्रीमान गोविन्दयोगी समाधिस्थ हैं। उनसे उपदेश प्राप्त करने की प्रतीक्षा में हम लोग अब बूढ़े हो चले हैं। यतियों के आदेश से कम्पित कलेवर शङ्कर ने उस अन्धकाराच्छन्न गुफा में प्रवेश किया। प्रदीप्त दीप-शिखा के क्षीण आलोक में विस्मय-विमुग्ध होकर शंकर ने देखा—कंकाल मात्रावसिष्ट, लम्बित जटाजूटधारी अतिदीर्घकाय एक संन्यासी पद्मासन में ध्यानस्थ बैठे हैं। उनकी देह सूख चुकी थी, पर उससे ज्योति फूट रही थी। हृदय के अव्यक्त आवेग में नतजानु शङ्कर ध्यानस्थ हो गये। अबाध आनन्दाश्रु से उनका वक्षस्थल भींग गया। उनके मुख से अनायास निःसृत स्तवगान की सुललित ध्वनि से गुफा मुखरित हो उठा। स्तुतिगान से आकर्षित अन्य संन्यासियों ने विस्मय-विमुग्ध भाव से देखा—आचार्य गोविन्दपाद की निश्चल निःस्पन्द देह बार-बार कम्पित होने लगी। उस सूखी देह में प्राणों का कम्पन होने लगा। क्षण भर में ही उन्होंने निःश्वास छोड़ कर चक्षुरुन्मीलित किया। क्रमशः उनका मन जीवभूमि पर उतर आया। यथासमय आसन का परित्याग करके गुफा से बाहर निकल आये।

पादावनत हो शंकराचार्य ने पूज्य गोविन्दाचार्य की विह्वल स्तुति की। पहले तो वे इस बालक संन्यासी को देख कर चकित हुए—क्या कोई इतनी कच्ची उम्र में संन्यासी हो सकता है? किन्तु, जब उनकी बातचीत शङ्कर से हुई तो उन्हें ज्ञात हुआ कि शंकर इतनी छोटी उम्र में सकल शास्त्रों का मन्थन कर लिया है। इस आभास से वे अति प्रसन्न हुए कि यह बालक शिवावतार वही शंकर है जिसे अद्वैत ब्रह्मविद्या का उपदेश देने के लिए हमने आजतक समाधि ली थी। शुभ मुहूर्त में गोविन्दपाद ने आचार्य शंकर को शिष्यरूप में ग्रहण किया। एक वर्ष के भीतर ही शंकर ने हठयोग में पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर ली। द्वितीय वर्ष में शंकर राज-योग में पारङ्गत हो गये। अब शङ्कर दूर श्रवण, दूर दर्शन, सूक्ष्म देह से व्योममार्ग में गमन, देहान्तर में गमन, इच्छा मृत्यु आदि के अधिकारी हो गये। तीसरे वर्ष में गुरुने अपने सुयोग्य शिष्य को ज्ञान-योग में पारंगत कर दिया। अब बलपूर्वक अपने मन को उन्हें जीव-भूमि पड़ रखना पड़ता था। शिक्षा समाप्त होने पर एक दिन आचार्य ने शिष्य से कहा—'वत्स! तुम्हारी शिक्षा पूरी हुई। अब तुम काशी जाओ। काशी विद्वानों की नगरी है। तुम शास्त्रार्थ के द्वारा विद्वानों

को वेदान्त सम्मत अद्वैतवाद का प्रतिपादन करो तथा वेदान्त पर भाष्य लिख कर वैदिक धर्म की स्थापना करो।[1]

## काशी-आगमन

शङ्कराचार्य सहर्ष गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर काशी चले आये। काशी में आकर उन्होंने वैदिक धर्म का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। इतनी कम उम्र में इतना अपार ज्ञान देख सभी विद्वान चकित हो उठे। चोलदेशीय सनन्दन नामक एक साधक तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए सद्गुरु की खोज में काशी आया था। शङ्कर की प्रतिभा से प्रभावित होकर वह उनका प्रथम संन्यासी शिष्य बन गया।

## देवी पार्वती का दर्शन और उनके सदुपदेश से शक्ति उपसना का संचार

एक दिन प्रत्यूष बेला में सशिष्य शङ्कर स्नानार्थ मणिकर्णिका घाट की ओर चले थे। रास्ते में उन्होंने देखा एक युवती अपने मृतपति के मस्तक को अपनी गोद में लिए जोर-जोर से विलाप करती हुई आने-जाने वालों से पति के दाह-संस्कार के लिए साहाय्य की भीख माँग रही थी। मणिकर्णिका की सकड़ी गली के मध्य शव पड़ा था। आचार्य किंकर्त्तव्य विमूढ़ थे। इधर

१. एक अन्य कथा के अनुसार वर्षा का समय था। गुरुदेव गुफा में समाधिस्थ थे। नर्मदा में भयंकर बाढ आई थी। जलस्तर ऊपर की ओर बढ़ते-बढ़ते गुफा के द्वार तक आ गयी। संन्यासी-गण गुरुदेव के विपन्न जीवन को देख कर घबड़ा उठे। शंकर ने बड़ी शान्ति से गुफा के दरवाजे पर एक मिट्टी का घड़ा अभिमन्त्रित कर रख दिया। अब तो नर्मदा का भयंकर जलप्रवाह उसी घड़े में घुस कर विलीन होने लगा। शंकर की यह अलौकिक शक्ति देख कर सभी अवाक् रह गये। जब गुरुदेव समाधि से उठे तब शिष्यों के मुख से शङ्कर की इस अमानवीय कार्य सुन कर प्रसन्न होकर कहा—'वत्स, मैं तुम्हें अब पहचान लिया, तुम्हीं शङ्कर के अंश से उद्भूत लोक-शङ्कर हो। एक बार व्यास जी ने मुझसे कहा था—'जो पुरुष एक घड़े के भीतर नर्मदा की विशाल-जल राशि को भर देगा, वही मेरे सूत्रों की व्याख्या करने में समर्थ होगा।' उनका कथन आज प्रत्यक्ष हो गया। अब तुम काशी जाकर भगवान विश्वनाथ के दर्शन करो। जिस प्रकार सहस्र धारा नर्मदा-स्रोतों को तुमने कुम्भ में अवरुद्ध कर दिया है, उसी प्रकार तुम व्यासकृत ब्रह्मसूत्र पर भाष्य रचना कर अद्वैत वेदान्त को उच्चतम आसन पर प्रतिष्ठित करने में सफल होगे तथा अन्य धर्मो को सार्वभौम अद्वैत ब्रह्मज्ञान में अन्तर्मुक्त कर दोगे। जाओ तुम्हारा पथ मङ्गलमय होगा।

वह औरत कुछ सुनने को तैयार नहीं थी, उधर स्नान में विलम्ब होते देख शङ्कर ने प्रार्थना की—माँ, इसे थोड़ा हटा लो, तो दूसरी ओर से हम निकल जायँ। पर कौन सुने? शङ्कर लगातार अनुरोध दुहराते जा रहे थे। अन्ततः खीझ कर युवती ने कहा—'महात्मन्, आप शव से ही हटने को क्यों नहीं कह देते।' आचार्य ने करुणाविल कण्ठ से कहा—माँ, तुम शोक में अत्यन्त अप्रकृतिस्थ हो गयीं हो। शव कैसे हट सकता है? उसमें हटने की शक्ति कहाँ? नारी ने आविल कंठ से कहा—क्यों यतिवर! "आपका शिव निरपेक्ष ब्रह्म यदि समस्त सृष्टि का कर्त्ता सकता तो फिर य शक्तिहीन शव हट क्य नहीं सकता?" एक नारी के मुख से ऐसी ज्ञानगम्भीर वाणी सुन कर आचाय शङ्कर आश्चर्य-चकित होकर क्षणभर के लिए सोच में पड़ कर नतानन हो गये। पर यह क्या? पलभर में स्थिति बदल गयी—वहाँ न वह नारी ओर न वहाँ वह शव? यह कैसी विडम्बना! शङ्कर का अन्तःकरण एक अनिवर्चनीय आनन्द से भर उठा। शंकर ने समझ लिया कि लोकवरदा भगवती विश्वेश्वर-वल्लभा ने स्वयं अपने अस्तित्व का परिचय दे दिया हैं। इस घटना के बाद शंकर के चिन्तन और व्यवहार में एक युगान्तर सा आ गया। अब वे विश्व के अणु-अणु में उसी महामाया की लीला का अनुभव करने लगे।

### काशीपति का दर्शन और उनके उपदेश से ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखने का संकल्प

रूपमे शिवजीका दर्शन

आचार्य शङ्कर को ब्रह्मात्मविज्ञान के व्यावहारिक क्षेत्र में उतारने के लिये काशी में ही एक और घटना घटी। एक दिन शंकर गङ्गास्नान करने मणिकर्णिका घाट की ओर जा रहे थे। सामने की सकड़ी गली में प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि एक भीषण मूर्त्ति कुरूप ओघड़ शृङ्खलाबद्ध अपने चारों भयानक कुत्तों के साथ आगे की ओर बढ़ता जा रहा है। उन्होंने कई बार उसे हट जाने के लिए कहा, पर वह इनकी बात अनसुनी कर आगे बढ़ता ही गया। अन्ततः लाचार होकर शंकर ने कहा—"अरे ओ, महामानव, रुको, रोको अपने इन कुत्तों को—हमें निकल जाने दो। ओघड़ ने मुस्कराते हुए कहा—"महात्मन्, तुम किसे हट जाने को कह रहे हो? आत्मा असङ्ग, चिद्रूप, आनन्दस्वरूप एवं सर्वव्यापक है। जो व्यक्ति आत्मा-आत्मा में भेद मानता है, वह सभी जीवों में एक ही ब्रह्म का निवास कैसे मानता? यदि देह की बात है तो वह जड़ है—वह कैसे हट सकती है और फिर एक देह दूसरी देह से किस अंश में भिन्न है? तत्त्वदृष्टि से क्या ब्राह्मण और चाण्डाल में कोई भेद है? गङ्गाजल और सुरा में भिन्न-भिन्न प्रतिबिम्बित एक ही सूर्य क्या भिन्न है? ओ यतिवर, क्या यही तुम्हारा ब्रह्मज्ञान है?"

ओघड़ की इन बातों को सुन कर शंकर की आँखें खुल गयीं। उन्होंने समझ लिया—निश्चय ही यह कोई दैवी लीला है। सहसा उनकी आँखों के आगे से ओघड़ सहित कुत्ते तिरोहित हो गये और उन्होंने देखा उनके सामने एक दिव्य त्रिशूलधारी विभूति खड़ा है। आचार्य ने गद्गद चित्त से भगवान शंकर के रूप में उन्हें देख, गुरु मानकर उनकी स्तुति प्रारम्भ कर दी। स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने कहा—"वत्स, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। लोक-कल्याण के लिए ही तुमने मेरे अंश से जन्म ग्रहण किया है। व्यासकृत ब्रह्मसूत्र पर भाष्य की रचना कर वेदान्त की निर्दोष व्याख्या द्वारा भ्रम-संकुल मतवादों का खण्डन कर अब तुम सर्वसाधारण में वैदिक धर्म का प्रचार करो।" इतना कह कर काशीपति अन्तर्ध्यान हो गये।

## ब्रह्मसूत्र पर भाष्य रचनार्थ वदरिकाश्रम प्रस्थान

गम्भीर अभिनिवेश के साथ ब्रह्मसूत्र पर भाष्य रचना के लिए आचार्य ने वदरिकाश्रम जाना स्थिर किया। अब काशी में विजयपताका फहराने के पश्चात् वे हिमालय की ओर चल पड़े। समुत्सुक जिज्ञासुओं को अपना उपदेशामृत पिलाते तथा अनेकानेक तीर्थों की धूलि मस्तक पर धारण करते हुए वे आगे बढ़ते गये। मात्र बारह वर्ष के ये संन्यासी तीन महीनों तक पथ-कष्ट का अनुभव करते हुए १०, २४४ फीट की ऊँचाई तक पहुँच गये। अब उन्हें थोड़ी दूर पर वदरी-क्षेत्र दिखाई पड़ने लगा। अमलधवल हिम-शिखर पर ढेर-ढेर सोना लुटाने वाली सूर्य-किरणें शंकराचार्य के मनःप्रान्तर में एक विचित्र आनन्द की लहरें उठाने लगीं। समीपस्थ तप्त-कुण्ड में स्नान कर आचार्य श्रीबदरी-विशाल के मन्दिर में प्रविष्ट हुए। पर, हाय! ऋषियों द्वारा प्रतिष्ठापित श्रीनारायणविग्रह के स्थान पर शालग्राम मूर्त्ति देखकर क्षणभर के लिए वे हतप्रभ हो गये, फिर भारी मन से देवार्चनादि समाप्त कर मन्दिर से बाहर निकले।

अर्चकों से पूछा—नारायणविग्रह से यह मन्दिर शून्य क्यों है? उत्तर मिला—विधर्मी दस्युओं के आक्रमण के समय हमारे पूर्वजों ने निकटवर्त्ती उस कुण्ड में श्रीविग्रह को छिपा दिया, बाद में सैकड़ों प्रयास के बाद भी उन्हें प्राप्त नहीं किया जा सका। कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद आचार्य उस नारद-कुण्ड की ओर चले। किनारे पर कुछ क्षण तक खड़े रहने के बाद धीरे-धीरे कुण्ड-जल में उतर पड़े। यह देख कर अर्चक एवं सहयात्री कहने लगे—'महात्मन्, कुण्ड के साथ अलकनन्दा का तीव्र संयोग है। भयंकर जलधारा आपको नदी-गर्भ में खींच लेगी। अनेकों व्यक्ति इसी प्रकार अपने प्राणों से

हाथ धो बैठे हैं, आप बाहर निकल आइये, पर शंकर ने जैसे कुछ सुना ही नहीं, कुण्ड में डुबकी लगा दी। कुछ देर में ही चतुर्भुज नारायण की एक मूर्त्ति हाथ में लिए बाहर आ निकले। पर, यह क्या वह मूर्त्ति तो खण्डित निकली। आचार्य ने उसे अलकनन्दा में विसर्जित कर दिया और पुनः उन्होंने डुबकी लगायी। इस प्रकार वे तीन बार डुबकी लगाते गये और तीनों बार वही भग्न मूर्त्ति हाथ लगी। ईश्वर की इस विचित्र लीला पर स्तम्भित होकर वे सोच ही रहे थे कि उन्हें आकाशवाणी सुनाई दी—"शंकर दुविधा में मत पड़ो, कलियुग में अब इस भग्न विग्रह की ही पूजा होगी।"

आचार्य शंकर का हृदय आनन्द से उद्वेलित हो उठा। उन्होंने स्वयं यथाशास्त्र उस मूर्ति का अभिषेक संपन्न कर मन्दिर में श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा कर दी और स्वजातीय नम्बूदरीपाद ब्राह्मण को उनकी पूजा का भार सौंप कर स्वयं व्यासाश्रम की ओर चल दिये।

बदरीनाथ के उत्तर में थोड़ी दूर पर त्रिकोण-क्षेत्र की अन्तिम सीमा पर स्थित एक पर्वतगुहा में व्यास जी का आश्रम था। यहाँ शंकर ने चार वर्षों तक निवास किया। यहीं उन्होंने ब्रह्म-सूत्र, गीता, उपनिषद् तथा सनत्-सुजातीय पर अपना प्रामाणिक भाष्य रचा और अपने शिष्यों को भाष्य पढ़ाना प्रारम्भ भी कर दिया। इन शिष्यों में सनन्दन विलक्षण बुद्धि का साधक निकला। शङ्कर ने उन्हें तीन बार अपना शारीरिक भाष्य पढ़ाया। अन्य शिष्यों के हृदय में इस पक्षपात से ईर्ष्या होने लगी।

कहा जाता है कि एक दिन सनन्दन अलकनन्दा के उस पार घूम रहा था। अचानक आचार्य ने आर्त्त स्वर से पुकारा—सनन्दन कहाँ हो ? शीघ्र आओ ? गुरु के इस त्रस्त आह्वान से सनन्दन विचलित हो उठा। पुल लाँघकर इस पार आने में बड़ा समय लगेगा यह सोच, प्राणों का मोह छोड़ कर उसपार से वह हिमाच्छन्न अलकनन्दा में सीधे कूद पड़ा। दूसरे तट पर खड़े अन्य शिष्य गण सनन्दन की आसन्न मृत्यु की आशङ्का से चीत्कार कर उठे। नदी की धारा में सहसा एक कमल प्रस्फुटित हो गया और उसी पर अपना पैर रख कर सनन्दन दूसरे क्षण गुरु के पास पहुँच गया। इस अलौकिक घटना से सभी शिष्य विस्मयविमुग्ध हो उठे। गुरु ने कहा—सनन्दन पर भगवती की कृपा है, आप लोगों ने देखा ? आज से यह पद्मपाद नाम से प्रसिद्ध होगा। अब सनन्दन की समझ में गुरु के आकुल आह्वान का रहस्य आया।

## तीर्थाटन

इस घटना के बाद आचार्य ने यहाँ से ज्योतिर्धाम के लिए प्रस्थान किया। ज्योतिर्धाम में कुछ दिन निवास करने के बाद केदार क्षेत्र के लिए

प्रस्थान किया। विकट मार्गों को तय करते हुए कुछ दिनों में आचार्य केदारनाथ पहुँचे। पूजा-अर्चा के बाद वहाँ से उन्होंने तुंगनाथ के लिए प्रस्थान किया। तुंगनाथ से आचार्य क्रमशः शोणितपुर, गुप्त काशी, मध्यमेश्वर, महिषमर्दिनी, शाकम्भरी, त्रियोगीनारायण, शोणप्रयाग, मुण्डहीन गणेश आदि स्थानों का दर्शन कर गौरी के तपस्यास्थल गौरीकुण्ड पहुँचे। इस स्थान की ऊँचाई ६५०० फीट है। केदार के इन निर्जन परिवेश में कुछ दिनों तक आत्मानन्द का साक्षात्कार कर आचार्य गंगोत्री की ओर चल पड़े। रास्ता दुर्गम था। ११, ३६४ फीट की पँवाली की कठिन चढ़ाई थी। हिंसक जंगली जन्तुओं से सारा पथ भरा था। फिर भी जीवन-मृत्यु से संग्राम करते हुए आचार्य शंकर एक पक्ष तक चलते रहे। अन्ततः १६ वां दिन उन्हें वहाँ भगवती भागीरथी के दर्शन हुए। भागीरथी के तीर से आचार्य सीधे गंगा के उत्पत्तिस्थान गोमुखी की ओर चल पड़े। यहाँ तक का पथ उस समय सर्वसाधारण द्वारा पार नहीं किया जाता था। पर जीवन और मृत्यु की परवाह किये बिना ही वे आगे बढ़ते गये। क्रमशः गोमुखी में आचार्य पहुँच कर आत्मविभोर हो उठे। घोर हिमपात के कारण अधिक दिनों तक वहाँ न ठहर कर वे पुनः गंगोत्री की ओर लौट पड़े। कुछ दिनों तक गंगोत्री में निवास करने के बाद आचार्य अपने शिष्यों के साथ उत्तर काशी पहुंच गये।

## भगवान वेदव्यास का दर्शन

उत्तर काशी में आचार्य अति आनन्दित थे। उस समय सोलहवें वर्ष में पदार्पण हो चुका था। एक दिन प्रातःकाल आचार्य शिष्यों को शारीरिक सूत्रभाष्य पढ़ा रहे थे। इतने में एक वृद्ध ब्राह्मण वहाँ उपस्थित होकर सामान्य अभिवादन के बाद ब्राह्मण ने आचार्य शंकर के साथ ब्रह्मसूत्र के एक सूत्र ( ३।३।१ ) पर शास्त्रार्थ प्रारंभ कर दिया। ब्राह्मण ने अनेक जटिल प्रश्नों की अवतारणा की। आचार्य ने शान्त भाव से सबों का यथार्थ उत्तर दिया। न तो ब्राह्मण के प्रश्नों का अन्त होता था और न आचार्य शंकर के ज्ञानभण्डार की कमी होती थी। शास्त्रार्थ लगातार सात दिनों तक चलता रहा। दोनों के असाधारण पाण्डित्य, स्मृतिशक्ति, मेधा, अन्तर्दृष्टि तथा विचार की निपुणता ने शिष्यों को स्तम्भित कर दिया। अन्ततः सातवें दिन ब्राह्मण ने शास्त्रार्थ की समाप्ति की घोषणा कर दी।

ब्राह्मण की विलक्षण प्रतिभा देखकर पद्मपाद के हृदय में संशय उत्पन्न हुआ। उन्होंने एकान्त में आचार्य से पूछा—प्रभु, ये ब्राह्मण देवता कौन हैं? इनकी प्रतिभा देखकर लगता है ये स्वयं छद्मवेषधारी वेदव्यास ही हैं। आचार्य ने हँसते हुए कहा—तुम्हारा अनुमान ठीक हो सकता है। दूसरे दिन ब्राह्मण के

आने पर श्रद्धावनत होकर आचार्य ने पूछा—देव ! हमें लगता है कि आप स्वयं कृष्ण-द्वैपायन वेदव्यास हैं। अगर यह सत्य है तो कृपया अपना स्वरूप दिखा कर हमें कृतार्थ कीजिए।

आचार्य की बात सुन कर ब्राह्मण ने हँसते हुए कहा—'वत्स, तुम्हारा अनुमान सत्य है।' इतना कह कर उन्होंने इन्हें अपना भव्य रूप दिखलाया और इनके शाङ्करभाष्य को स्वयं देखा। स्थान-स्थान पर भाष्य में किये गये कटाक्षों की सराहना करते हुए उन्होंने अपने ब्रह्मसूत्रों के अभिप्राय को ठीक-ठीक व्याख्या करने के कारण आशीर्वाद दिया और शङ्कर को १६ वर्ष की और अतिरिक्त आयु देकर चिन्तामुक्त कर दिया। अद्वैततत्त्व के प्रचुर प्रचार के लिए कुमारिल भट्ट, मण्डन मिश्र प्रभृति विद्वानों को जीत कर अपने मत में ले आने का उपदेश देकर वे तत्काल अन्तर्ध्यान हो गये।

## दिग्विजयी (जगद्गुरु) बनने का संकल्प

भगवान वेदव्यास के चले जाने पर आचार्य शंकर के मन में 'कुमारिलविजय' भावना बार-बार उठने लगी। पर कुमारिल भट्ट कौन हैं? कैसे और कहाँ मिलेंगे? यह एक गम्भीर समस्या थी। एक दिन एक वृद्ध ब्राह्मण ने आचार्य के शिष्यों को बतलाया कि कुमारिल भट्ट एक प्रातःस्मरणीय व्यक्ति हैं। वे दिग्विजयी विद्वान् हैं। विभिन्न धर्म एवं मतावलम्बियों को शास्त्रार्थ में उन्होंने पराजित कर वैदिक-धर्म की पुनः प्रतिष्ठा की है। इस आर्यभूमि में वैदिक धर्म की पुनः स्थापना के लिए उनका शरीर धारण हुआ है। उत्तर भारत के मिथिलाप्रदेश में एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण कुल में उनका जन्म हुआ है।' आजकल अत्यन्त वृद्ध होने के कारण वे तीर्थराज प्रयाग में निवास कर रहे हैं।

१. (क) संस्कृत सुकवि समीक्षा पृ० ४३३ में आचार्य बलदेव उपाध्याय लिखते हैं—'मिथिला की जनश्रुति है कि कुमारिल मैथिल ब्राह्मण थे, जो ठीक हो सकती है।'

(ख) मिथिला देश यज्ञदेश है 'स ज्ञेयो यज्ञियो देशः' अत एव मीमांसा शास्त्र का इस देश में सदा से सम्मान है। बड़े-बड़े मीमांसक वहीं उत्पन्न हुए—यथा भट्ट कुमारिल, प्रभाकर मिश्र, मुरारि मिश्र, मण्डन मिश्र, शालिकनाथ मिश्र, पार्थसारथि मिश्र वाचस्पति मिश्र आदि आदि १४ सौ दार्शनिक मीमांसक उस समय मिथिला में थे।

(ग) आनन्दगिरि ने अपने 'शंकर-विजय' पृ० १८० में लिखा है—भट्टाचार्याख्यो द्विजवरः कश्चित् उदग्देशात् समागत्य दुष्टमतावलम्बिनो बौद्धान् सांख्यान्... निर्जित्य... ...निर्भयो वर्तते।

# वेदावतार कुमारिल भट्ट का दर्शन

कुमारिलभट्ट के उत्कर्ष पाण्डित्य को सुन कर आचार्य शंकर प्रभावित हो उठे। शावरभाष्य पर कुमारिल द्वारा लिखित विस्तृत वार्तिक आचार्य का दूसरा आकर्षक था। वे ब्रह्मसूत्र पर भाष्य की रचना कर चुके थे। उनकी इच्छा थी कि कोई विशिष्ट विद्वान् इस पर वार्तिक लिखें। आचार्य अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनी शिष्य-मण्डली के साथ उत्तर काशी से प्रयाग की ओर प्रस्थान कर दिये। यमुना के किनारे-किनारे चलकर वे त्रिवेणी तट पर पहुँच कर शान्तभाव से एक वृक्ष के नीचे बैठे ही थे कि किसी ने सूचना दी कि भट्टपाद गुरुवध (?) के प्रायश्चित्त स्वरूप आज तुषानल में प्रविष्ट हो रहे हैं। समाचार सुनते ही आचार्य उधर चल पड़े। दूसरे ही क्षण उन्होंने देखा पर्वत के समान तुषों की ढेर पर कुमारिल उपविष्ट हैं और नीचे से आग सुलग रही है। आचार्य उनकी विद्वत्ता से परिचित थे। ऐसे विद्वान् की यह दशा देखकर वे बड़े विह्वल हुए। उन्होंने कहा—हे पण्डिताग्रगण्य, आज मैं आप के पास वेदव्यास जी द्वारा आदिष्ट होकर उपस्थित हुआ हूँ। आपको वैदिक धर्म की रक्षा में मेरे द्वारा लिखित भाष्यों का वार्तिक लिखना है। अतः आप अपने को तुषानल में प्रवेश न करें।

पर, कुमारिल भट्ट का निर्णय अटल था। उन्होंने आचार्य से कहा—यतिवर! मैं अन्तिम समय आपका दर्शन कर कृतार्थ हूँ। मैंने बौद्धों को पराजित करने के लिए छद्मवेष धारण कर विद्या पायी है। उसी छद्म का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। क्योंकि—

अवादिषं वेदविघातदक्षैस्तन्नाशकं जेतुमबुध्यमानः।
तदीयसिद्धान्तरहस्यवार्धीन् निषेव्य बोधाद्धि निषेव्य बाधः॥

—(शं० दि० सर्ग ७—श्लो० ९३)

मैंने अपने जीवन में दो महान् अपराध किये हैं—एक तो अपने ही बौद्ध गुरु धर्मपाल को शास्त्रार्थ में पराजित कर उनके शरीर का नाश और दूसरा जैमिनि के मीमांसादर्शन में एकनिष्ठ चित्त से 'ईश्वर असिद्ध है' ऐसा प्रमाणित करना। दोनों ही महान् दोषों के लिए मैं अपराधी हूँ। मेरे इस पाप के प्रायश्चित्त का एक ही मार्ग है—तुषानल में प्रविष्ट होकर देह-त्याग। किन्तु,

(च) तिब्बती विद्वान् तारानाथ का कहना है कि कुमारिलभट्ट प्रसिद्ध बौद्ध पण्डित धर्मकीर्त्ति के पितृव्य थे। इनका जन्म चोल राज्य के त्रिमलय नामक स्थान में हुआ था। पर भारतीय पुरातत्त्ववेत्ता इसके सर्वथा विरुद्ध हैं।

मेरे प्राणविसर्जन के समय आप मेरी एक बात अवश्य स्मरण रखें। आप मेरे शिष्य विचक्षण-विद्वान् मण्डन मिश्र को अपने पाण्डित्य द्वारा अवश्य वशीभूत करें। उनका साथ मिल जाने पर आपको अपने वेदान्त के प्रचार-प्रसार में बड़ी सुगमता होगी।

तबतक भट्टपाद के शरीर में अग्नि का उत्ताप अनुभूत होने लगा। उन्होंने शंकर से सविनय कहा—महात्मन्, अब मैं चित्त को परब्रह्म में समाहित कर रहा हूँ। आप कृपया मुझे तारक ब्रह्म का नाम सुनाइये। यह सुनकर शङ्कर का मुखमण्डल हृदयावेग से आरक्त हो उठा। वे अति गम्भीर स्वर से तारक ब्रह्म का नामोच्चारण करने लगे। देखते ही देखते वेद का वह प्रदीप्त सूर्य तीर्थराज प्रयाग में अस्त हो गया। भाराक्रान्त प्राण से उस स्थान को छोड़कर आचार्य शङ्कर अपने शिष्यों के साथ मण्डन मिश्र से मिलने के लिए चल दिये।

## मण्डन मिश्र की खोज में आचार्य का मिथिला (?) प्रस्थान

जिस समय चलते-चलते आचार्य शङ्कर मण्डन-मण्डित माहिष्मती[1] (वर्तमान समय मिथिला के महिषी गाँव) पहुंचे, दोपहर का समय हो गया था।

१. इतिहासकारों ने एकमत से मण्डन मिश्र की जन्म-भूमि का नाम 'माहिष्मती' स्वीकार किया है। कुछ लोगों ने अनर्गल अनुमान लगाकर 'मान्धाता' को ही 'माहिष्मती' सिद्ध करने की कुचेष्टा की है, जिनमें न इसकी कोई मापक युक्ति, तर्क या तुक ही है। मान्धाता इन्दौर जनपद का एक छोटा सा गाँव है, जहाँ न मण्डन मिश्र का स्मृति-शेष है और न कुछ स्मारक ही। ठीक इसके विपरीत मिथिला जन-पद के आधुनिक 'सहरसा' जिले में 'माहिष्मती' का अपभ्रंश 'महिषी' नामक प्रतिष्ठित मैथिल ब्राह्मणों का एक गाँव है, जिसमें मिश्रजी के वंशज अभी भी विद्यमान हैं, उस गाँव में मण्डन मिश्र द्वारा स्थापित भगवती उग्रतारा का मन्दिर आज भी क्षेत्रीय जनता का तीर्थस्थल बना है। इस गाँव में मण्डन मिश्र का स्मारक तो है ही, उनके वंशावली भी है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी आचार्य शंकर के साथ इनका काल ठीक बैठ जाता है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी 'माहिष्मती' का अपभ्रंश 'महिषी' भी युक्तिसंगत प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में महामान्य मण्डन को मिथिलेतर जनपद-वासी कहकर एक तथ्य को छिपाने के सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। संभव है इन्दौर जनपद में भी मण्डन मिश्र नाम का कोई विद्वान् ब्राह्मण हुआ हो, किन्तु आचार्य शंकर के शिष्य सुरेश्वराचार्य (मण्डन) तो महिषी निवासी मैथिल ही थे। इतना ही नहीं मण्डन मिश्र शाक्त मैथिल थे, इसका अन्तरङ्ग प्रमाण भी उपस्थित है। आचार्य शंकर ने जिस

अपने शिष्यों को एक भव्य मन्दिर ( मंडन स्थापित भगवती तारा ) के प्राङ्गण में विश्राम करने की अनुमति देकर स्वयं मण्डन मिश्र से मिलने चले। मण्डन मिश्र कितने बड़े उद्भट विद्वान् थे इसका पता इसी से चल जाता है कि आचार्य ने जब एक स्त्री से मण्डन मिश्र के घर का पता पूछा तो उसने कहा—"वेद स्वतः प्रमाण है या परतः प्रमाण है, कर्म स्वतः फल देता है या कर्म का फल ईश्वर देता है, इतना ही नहीं, जगत् सत्य है अथवा असत्य इन विषयों की चर्चा जहाँ पिंजरस्थ शुकाङ्गनाएँ करतीं हों, वही मण्डन मिश्र का घर है"—

"स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥
फलप्रदं कर्मफलप्रदोऽजः कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥
जगद्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात् कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति,
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥"

—स्त्री की इन बातों को सुनकर आचार्य बड़े ही चकित हुए। जिस समय वे आचार्य मण्डन मिश्र के घर पहुंचे, उस समय उनके घर के सभी दरवाजे एकदम बन्द थे। शिष्यों ने बताया "अभी हमारे आचार्य भीतर प्रांगण में पिता का वार्षिक श्राद्ध कर रहे हैं। अतः इस समय किसी को अन्तःपुर जाने की अनुमति नहीं है।" तब शङ्कर अपने योग-बल द्वारा आकाश से प्राङ्गण में पहुंच गये। मण्डन ने इस श्राद्ध में महर्षि जैमिनि और व्यास जी को भी निमंत्रित किया था।[१] मिश्र जी इन दोनों की सेवा में नियुक्त थे। सहसा आकाश मार्ग से एक संन्यासी को उतरते देख, बड़े विस्मित हुए। इधर शंकर ने इन दोनों महर्षियों

उद्देश्य से मण्डन मिश्र को अपना शिष्य बनाया, पद्मपाद के अन्य शिष्यों ने इस उद्देश्य की पूर्ति इस लिये नहीं होने दी थी कि वे पहले के शाक्त मैथिल थे। शंकरदिग्विजय एवं शंकराचार्य के जीवनवृत्त से सम्बन्धित कतिपय अन्य ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख है कि मण्डन मिश्र ने परिस्थितिवश पराजित होकर संन्यास ग्रहण किया था, अतः उनके द्वारा आचार्य शंकर के भाष्य पर वार्तिक की रचना उचित नहीं समझ कर ही पद्मपाद के शिष्यों ने श्री मिश्र से विरोध कर इनके द्वारा प्रारब्ध वार्त्तिक-रचना कार्य को बन्द भी करवा दिया था। अतः युक्तियों, तर्कों एवं तथ्यों के आधार पर पूज्य मिश्र जी मैथिल मीमांसक ही सिद्ध होते हैं।

१. मण्डन मिश्र एक मंत्र-सिद्ध शाक्त मैथिल थे। वे कतिपय अलौकिक शक्तियों के भी अधिकारी थे। मंत्र-बल से ही उन्होंने इन दोनों दिवंगत सूक्ष्म देहधारियों को बुलाया था।

मुण्ड्यागलान्मुण्डी पन्थास्ते पृच्छ्यते मया
किमाह पन्था त्वन्माता मुण्डेत्याह तथैव हि ||

को एक साथ उपस्थित देख कर उनके चरण की वन्दना की। परन्तु, मण्डन मिश्र आवेश में आकर बोल उठे—

## आचार्य और मण्डन मिश्र में परस्पर व्यंग्योक्ति

मण्डन—कुतो मुंडी ? ( ओ संन्यासी, तुम इस अवसर पर कहाँ से आये ? )

'कुतो मुण्डी' का दूसरा अर्थ यह भी है कि 'तुम किस अङ्ग से मुण्डित हो'। इसी अर्थ को मान कर—

शंकर—मैं गले तक मुण्डी हूँ, अर्थात् मेरा सिर मुड़ा है।

मण्डन—'पन्थाः पृच्छ्यते' (राह के विषय में पूछता हूँ कि कहाँ से आये हो ?)

'पन्थाः पृच्छ्यते' को कर्मवाच्य का प्रयोग मानकर अर्थात् 'मार्ग मुझ से पूछा जाता है' इस अर्थ को लक्षित कर—

शंकर—मार्ग से पूछने पर उसने आपको क्या उत्तर दिया ?

मण्डन—मार्ग ने मुझे उत्तर दिया—'त्वन्माता मुण्डा' ( तुम्हारी माता मुण्डा है। )

शंकर—बहुत ठीक। आप ने मार्ग से पूछा है, अतः उसका उत्तर भी आप के लिए ही है।

मण्डन—'अहो पीता किमु सुरा' ( क्या तुमने सुरा ( शराब ) पीली है ) ?

'पीता' शब्द का दूसरा अर्थ पीला रङ्ग भी है, इसी अर्थ को लक्ष्य कर—

शंकर—सुरा श्वेत होती है पीली नहीं।

मण्डन—वाह तुम तो उसके रङ्ग को भी जानते हो।

शंकर—मैं तो रङ्ग ही जानता हूँ, आप तो उसके रस से भी परिचित हैं।

मण्डन—'मत्तो जातः कलञ्जाशी विपरीतानि भाषते' ( कलञ्ज अर्थात् विषैले बाण से मारे गये हिरण के मांस, खाने से तुम मत्तः अर्थात् पागल हो गये हो क्या ? )

'मत्तः' शब्द अस्मद् शब्द से तसिल् प्रत्यय करने पर भी बनता है, जिसका अर्थ हुआ 'मत्तो जातः' अर्थात् मुझ से उत्पन्न 'मेरा पुत्र'। इसी अर्थ को ग्रहण कर—

शंकर—आप ठीक ही कह रहे हैं। पिता के समान ही आप से उत्पन्न पुत्र 'कलञ्ज' खाने वाला होगा।

इस प्रकार क्रोध से मण्डन मिश्र दुर्वाच्य बोल रहे थे और आचार्य शंकर उनकी हर बातों का उत्तर उपहासपूर्वक बड़े शान्त भाव से दे रहे थे तथा जैमिनि मुसकराते हुए इन दोनों की चर्चा में रस ले रहे थे कि सहसा व्यास जी

[illegible] विपरितानि भावने।
[illegible]॥

बीच ही में बोल उठे—"मण्डन, ये यति हैं, अतएव विष्णुस्वरूप हैं। इसके अतिरिक्त अभी ये आपके अतिथि भी हैं। इनका यथोचित सत्कार होना चाहिए।

तब मिश्रजी शान्त हो गये। शास्त्रज्ञ तो थे ही व्यास जी की आज्ञा से प्रकृतिस्थ होकर यथाविधि अतिथिसत्कार करते हुए भिक्षाटन के लिए उन्होंने आचार्य शंकर को आमन्त्रित किया।

शंकर ने कहा—हे सौम्य! मैं यहाँ अन्न-प्रार्थी होकर नहीं, प्रत्युत आपसे शास्त्रार्थ करने के निमित्त आया हूँ। प्रण यह है कि शास्त्रार्थ में जो पराजित होगा, उसे दूसरे का शिष्यत्व स्वीकार करना पड़ेगा। सुधीवर, मुझे इसी की भीख चाहिए। मैं विचार-प्रार्थी होकर आपके गुरु वेदावतार भट्ट कुमारिल के पास प्रयाग गया था, उन्होंने प्रायश्चित्त के लिए महाप्रयाण किया है। महाप्रयाण करते समय उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है। विचार में आपको पराजित कर आपके द्वारा मैं स्वरचित प्रस्थानत्रय के भाष्यों के वार्तिक की रचना करना चाहता हूँ। इसी उद्देश्य से मैं आपके पास आया हूँ। गुरु के स्वर्गवास का समाचार सुन कर पहले तो वे पर्याप्त दुखी हुए—कुछ क्षण पश्चात् स्वस्थ होकर उन्होंने कहा—"मैं आपके विचार से सहमत हूँ।" आज श्राद्ध-कार्य समाप्त कर लूँ, कल प्रातःकाल विचार प्रारम्भ होगा।"

## आचार्य का मण्डन मिश्र तथा भारती से शास्त्रार्थ

प्रातः शास्त्रार्थ में मध्यस्थ के लिए आचार्यने उन (महर्षि जैमिनि और व्यास) दोनों मुनियों से प्रार्थना की, किन्तु वे इस बात को जानते थे कि मण्डन की पत्नी "उभय भारती" सरस्वती का अवतार हैं। अतः उन्होंने समवेत स्वर से कहा—'इस विचार में मण्डन की पत्नी ही मध्यस्था रहेंगी।' फिर क्या था दूसरे दिन दोनों विद्वानों में वाग्युद्ध प्रारंभ हुआ। दोनों पक्षों की सम्मति से भारती ससंकोच मध्यस्थ के आसन पर आ बैठी। दोनों महापुरुषों की ग्रीवाओं में मालाएँ डाल दी गयीं। भारती ने कहा—'जिसकी माला पहले कुम्भलायेगी वह पराजित माना जायेगा।' जब कई दिनों तक शास्त्रार्थ चलता रहा तो एक दिन मण्डन के गले की माला कुम्हला गयी। पराजित मण्डन ने शङ्कराचार्य को गुरु मान लिया। उन्होंने आचार्य से संन्यास-धर्म में दीक्षित करने की प्रार्थना की। इस बार भारती ने कहा—'मैं इनकी अर्द्धाङ्गिनी हूँ। जब तक आप मुझे पराजित नहीं करते तब तक आपकी विजय पूरी नहीं मानी जायगी।' भारती के साथ भी १७ दिनों तक शास्त्रार्थ चलता रहा। पण्डित-मण्डली भारती के अगाधशास्त्रज्ञान और असामान्य विचार-शक्ति से अत्यन्त विस्मित थी। इधर भारती ने देखा कि वेदादि समस्त शास्त्रों में आचार्य को

जीतना संभव नहीं है। अतः १८वें दिन आसन पर बैठते ही उन्होंने प्रश्न किया—'काम का क्या लक्षण है? काम-कला कितने प्रकार की होती हैं? शरीर के किस अङ्ग में काम का निवास है तथा किन क्रियाओं से स्त्रियों में उसका आविर्भाव होता है?

शङ्कर इन प्रश्नों को सुनकर स्तब्ध रह गये। कुछ क्षणों के बाद उन्होंने कहा—देवि, एक बालसंन्यासी से इस प्रकार के प्रश्न क्यों पूछ रही हैं?

भारती ने कहा—क्यों यतिवर, कामशास्त्र क्या शास्त्र नहीं है? सर्वत्यागी संन्यासी होकर भी आप विजिगीषा छोड़ नहीं सके। संन्यासी तो जितेन्द्रिय होते हैं न? काम-चर्चा में आपको चित्त-विकार क्यों होगा? मण्डन किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये थे। पर, पत्नी के ऐसे अशोभनीय प्रश्नों से विचलित होकर उन्होंने कहा—'देवि, तुम्हें ऐसे प्रश्न शोभा नहीं देते।' भारती ने सगर्व कहा—क्यों? ज्ञानलाभ होने से तो कामक्रोधादि पर भी विजय प्राप्त होता है—अगर कामशास्त्र की आलोचना से इनमें चित्तविकार उत्पन्न होगा तो फिर ये तत्त्वज्ञानी कैसे हैं? और अगर इन्हें तत्त्वज्ञान नहीं है तो आपके गुरु होने योग्य भी नहीं हैं। पत्नी की बात सुन कर मिश्र जी मौन हो गये और आचार्य ने हँसते हुए कहा—'मातः, आपके प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मैं एक मास का समय चाहता हूँ। भारती ने कहा—तथास्तु (मंजूर है)

मण्डन मिश्र के घर छोड़कर आचार्य अपने शिष्यों के साथ यंत्र-चालित की तरह पूर्वोत्तर की ओर चल पड़े। कुछ दिन रास्ता चलने के बाद एक विशाल जनहीन वन दिखाई पड़ा। अपने शिष्यों की सलाह लेकर अपना शरीर एक गुफा में शिष्यों के संरक्षण में छोड़कर आत्मना एक मृत राजा के शरीर में प्रवेश कर गये और वह मृत राजा जी उठा। राजवेषधारी शङ्कर ने राजा की रमणियों के सम्पर्क में रह कर कामशास्त्र में विशेष निपुणता प्राप्त कर ली और वात्स्यायन लिखित कामसूत्रों का अध्ययन भी राजपण्डितों के सम्पर्क से कर लिया तथा भारती के सभी प्रश्नों के उत्तर में कामशास्त्र पर एक ग्रन्थ ही रच डाला। एक दिन आचार्य शंकर आत्मना राजा का शरीर छोड़ कर गुफा में रखी अपनी देह में पुनः आ गये और शिष्य-मण्डली के साथ मण्डन मिश्र के घर चल पड़े।

३१वें दिन मिश्र जी आचार्य के लौटने की प्रतीक्षा में थे ही कि आचार्य उपस्थित हो गये और उन्होंने भारती को अभिनन्दित करते हुए कहा—देवि, यह ग्रन्थ स्वीकार कीजिए। इसमें आपके सभी प्रश्नों के उत्तर लिखे हैं। भारती ने उस कामशास्त्र के ग्रंथ को आदि से अन्त तक पढ़ कर विद्वन्मण्डली के समक्ष पति की पराजय स्वीकार कर लिया। पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार मण्डन मिश्र ने

शङ्कर से संन्यास की दीक्षा ले ली।[1] आचार्य ने उन्हें सुरेश्वराचार्य के नाम से विख्यात किया। उसी समय भारती ने योगारूढ़ होकर अपना पार्थिव शरीर छोड़ दिया।

## पराजित मण्डन का शिष्यत्व ग्रहण और दिग्विजयी आचार्य के साथ भ्रमण कापालिक का व

मण्डन उस युग की पण्डित-मण्डली के मण्डन थे। सपत्नीक उन्हें पराजित होने के पश्चात् शङ्कर की कीर्ति-कौमुदी चारों दिशाओं में फैल गयी। वे अपने विचारों का प्रचार करने पहले तमिलप्रदेश पहुँचे। कुनूल जिले में श्रीपर्वत नामक एक पवित्र स्थान है, वहाँ कापालिकों का भारी अड्डा था। यहीं रहते समय शङ्कर का उग्र भैरव नामक एक कापालिक से संघर्ष हुआ था। वह धूर्त कापालिक आचार्य का शिष्य बन गया और कार्यसिद्धि के लिए अवसर ढूंढ़ने लगा। एक दिन उसे अवसर मिल गया। आचार्य एकान्त में बैठे थे, उग्र भैरव ने रोते हुए विनय के साथ कहा—देव, आप मेरे एकमात्र अभीष्ट को पूर्ण कर मेरा मानवजन्म सार्थक कीजिए। यही मेरी कातर प्रार्थना है। आचार्य का हृदय करुणा से द्रवीभूत हो उठा, उन्होंने कहा—वत्स, तुम्हारा अभीष्ट क्या है? उसने कहा—'देव, मैंने महादेव की जीवन भर उग्र तपस्या की है। महादेव ने मेरी तपस्या से प्रसन्न होकर मुझ से कहा है कि यदि मैं किसी महान् तपस्वी के मस्तक से रुद्र का होम कर सकूँ तो मुझे भगवान शङ्कर के पार्षदों में स्थान मिल जायेगा। आप सर्वज्ञ पुरुष हैं, आप से क्या बताऊँ? अगर आपका मस्तक नहीं मिला तो मेरा सारा जीवन व्यर्थ हो जायेगा। उग्र भैरव की प्रार्थना सुन कर आचार्य ने उसे बहुत तरह से समझाया किन्तु परिणाम नगण्य रहा। अन्ततः आचार्य ने सोच-विचार कर कहा—'तुम्हारी प्रार्थना पूरी होगी' पर, शिष्यों को यदि यह पता चल गया तो तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं होगी। उसने कहा—आप साक्षात् भगवान् हैं। किसी को कुछ भी पता नही चलेगा। मैं सारा प्रबन्ध कर लूँगा। निकट के जंगल में भैरवों का एक आसन है; वहीं सारा आयोजन होगा। अगली अमावास्या की मध्य रात्रि में आप वहाँ आ जायेंगे।

आचार्य सहमत हो गये। अमावास्या की मध्यरात्रि आगयी। शिष्यों को

---

१. महान् आस्तिक शाक्त मिथिला के इतिहास में एकमात्र मण्डन ही ऐसे विद्वान् हुए, जिन्हें परिस्थितिवश विवश होकर संन्यास धारण करना पड़ा।

अश्वालम्भं गजालम्भं संन्यासं पलपैत्रिकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥

मिथिला में यह मन्वादिस्मृतिवचन अभी भी सर्वमान्य है।

सोते हुए छोड़ कर आचार्य अकेले जंगल की ओर चल पड़े। उग्रभैरव बीच रास्ते में ही आचार्य की प्रतीक्षा कर रहा था। पूजा का सारा आयोजन प्रस्तुत था। होमाग्नि प्रज्वलित थी। उग्रभैरव का दैत्यसदृश एक सहचर हाथ में त्रिशूल लिए उस स्थान की रक्षा कर रहा था। उसने आचार्य से कहा—प्रभो, शुभ मुहूर्त्त उपस्थित है, आप बलि-पत्थर पर अपना सिर रखिये। आचार्य ने शान्त भाव से कहा—क्षण भर रुको, मैं समाधिस्थ हो जाऊँ, उसके बाद तुम अपना काम करना। आचार्य योगासन में बैठकर समाधिस्थ होगये।

उधर शिष्यों के साथ सो रहे पद्मपाद ने स्वप्न में देखा "एक कापालिक आचार्य की गरदन काट रहा है।" बड़े ही आर्द्रभाव से पद्मपाद ने अपने इष्टदेव नृसिंह से प्रार्थना की। उसने देखा—भयंकर मूर्त्ति धारण कर भगवान चारों ओर ज्योति फैलाते हुए सम्मुख उपस्थित होकर उसके शरीर में प्रविष्ट हो गये। फिर क्या था? भीषण गर्जन करते हुए शय्या से उठकर पद्मपाद जंगल की ओर दौड़ पड़े। उधर उग्र भैरव तेज तलवार हाथ में लिए आचार्य का मस्तक काटने के लिए खड़ा था। झपट कर नृसिंह-देवाविष्ट पद्मपाद ने उग्र भैरव के हाथ से खड्ग लेकर उसीका सिर काट डाला। इस भयंकर परिवर्त्तन से वहां उपस्थित सभी कापालिक भाग खड़े हुए। पद्मपाद उन्मत्त की तरह गरज रहे थे। तबतक आचार्य के सभी शिष्य वहाँ पहुंच गये। भयङ्कर दृश्य को देख कर सभी थरथर काँपने लगे। पद्मपाद के गर्जन से आचार्य की भी समाधि टूट गयी। उन्होंने देखा देवताओं को भी संत्रस्त करनेवाले उग्ररूप में भगवान नृसिंह उनके सामने गरज रहे हैं। वे नारायण को उस रूप में उपस्थित देख कर भक्तिकातर भाव से उनकी प्रार्थना करने लगे। दूसरे ही क्षण नृसिंहदेव अदृश्य हो गये और पद्मपाद मूर्छित होकर गिर पड़े।

शिष्यों की सेवा से पद्मपाद पुनः चैतन्य लाभकर आचार्य को अपना स्वप्न वृत्तान्त कहने लगे। सुरेश्वराचार्य ने अत्यन्त हर्षावेग से पद्मपाद को गले लगा लिया।

इस घटना के बाद आचार्य शङ्कर ने दक्षिण भारत के अन्य तीर्थों की ओर प्रस्थान किया। सर्वप्रथम यहाँ से आचार्य गोकर्ण क्षेत्र गये। बम्बई में पश्चिमी समुद्र के किनारे यह क्षेत्र आज भी सुप्रसिद्ध शैव-तीर्थ माना जाता है। यहाँ आचार्य कई दिनों तक रहे। यहीं उन्होंने महाबलेश्वर भगवान शंकर की स्तुति की। यहाँ से अपनी शिष्य-मण्डली के साथ आचार्य हरिशंकर नामक तीर्थ पहुँचे। इस तीर्थ के नामानुरूप उन्होंने हरिशंकर की स्तुति श्लेषपूर्ण पद्यों में की। इसके बाद मूम्बिका के मन्दिर की ओर चल पड़े। रास्ते में एक विचित्र घटना घटी।

## जीवनदान

आचार्य धीरे-धीरे ध्यानमग्न होकर आगे बढ़ रहे थे कि उन्होंने एक द्विज-दम्पति को अपने मृत-पुत्र को गोद में लिए आर्त्तक्रन्दन करते देख करुणा-विगलित आचार्य का हृदय द्रवीभूत हो उठा, उनके पैर सहसा रुक गये। द्विज-दम्पति ने मृत-पुत्र को उनके चरणों पर डालकर उसके प्राण की भीख माँगने लगे। आचार्य का गतिपथ रुद्ध था। वे यथास्थित खड़े-खड़े आँख बन्द कर भगवती मूम्बिका की स्तुति करने लगे। उपस्थित जनसमूह विस्मय-विमुग्ध होकर भावाविष्ट यति को देख रहा था। अचानक आचार्य के चरणों पर स्थित शिशु का शव धीरे-धीरे स्पन्दित हो उठा—मानो शिशु निद्रा से जग कर इधर-उधर देखने लगा। द्विजदम्पति के पास कृतज्ञता प्रकट करने का शब्द नहीं था। आचार्य धीरे-धीरे देवीदर्शन के लिए मन्दिर में प्रविष्ट होकर भावाविष्ट स्थिति में भगवती के गम्भीर ध्यान में लीन हो गये।

## शारदा पीठारोहण

मूम्बिका पण्डितप्रधान स्थान है। वहाँ शारदा-पीठ प्रतिष्ठित है। स्थानीय पण्डितों को शास्त्रार्थ में पराजित करके ही कोई उस पीठ में बैठने का अधिकार लाभ कर सकता था। अबतक उस पीठ में बैठने का दुर्लभ सम्मान किसी को प्राप्त नहीं हुआ था। शास्त्रार्थ के लिए निमंत्रित होकर आचार्य भी शारदा-पीठ आये थे। पण्डितों की अपार भीड़ एकत्र हो गयी थी। शास्त्रार्थ कई दिनों तक चलता रहा अन्त में आचार्य ने धीर भाव से सभी प्रश्नों का उत्तर देकर सबों को निरस्त कर दिया।

सभासदों ने साग्रह शारदा-पीठारोहण के लिए आचार्य से निवेदन किया। कुछ दिनों तक आचार्य वहाँ रहकर अपने शिष्यों के साथ श्रीवलि की ओर चल पड़े।

श्रीवलि अग्निहोत्री ब्राह्मणों की प्रधान बस्ती थी। मृत-शिशु को जिलाने की आचार्य की कीर्त्ति पहले ही वहाँ पहुंच चुकी थी। यहाँ प्रभाकर नामक एक धार्मिक ब्राह्मण रहते थे। उन्हें १३ वर्ष का एक पुत्र था, जो जन्म से ही जड़ था—न किसी से बातें करता और न हँसता-बोलता ही था। ब्राह्मण अपने पुत्र की दयनीय स्थिति से अत्यन्त दुखी थे। आचार्य के वहाँ पहुँचते ही, उन्होंने अपने पुत्र की राम-कहानी कह सुनाई और अपने बालक को शंकर के चरणों में उपस्थित कर दिया। उस ब्राह्मण की बात सुनकर आचार्य ने ब्राह्मण से पूछा—

कस्त्वं शिशो कस्य कुतोऽस्ति गन्ता, किं नाम ते त्वं कुत आगतोऽसि।
एतद् वद त्वं मम सुप्रसिद्धं मत्प्रीतये प्रीतविवर्धनोऽसि॥

आचार्य के प्रश्नों को सुनकर उनके श्रीमुख पर दृष्टिनिबद्ध कर मधुर कण्ठ से बालक ने उत्तर दिया—

नाहं मनुष्यो न च देवयक्षो न ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः ।
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो भिक्षुर्न चाहं निजबोधरूपः ॥

आचार्य के प्रश्न पर जन्म के गूंगे बालक के मुख से आत्मस्वरूप प्रकाश श्लोकात्मक वाक्य सुन कर सभी आश्चर्य-चकित हो गये। आचार्य ने भी विस्मित होकर अपने शिष्यों से कहा—यह बालक अवश्य कोई ब्रह्मज्ञ पुरुष है। हाथ के आमले की तरह ही इसने ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त कर लिया है। इसने श्लोक-बद्ध अभी जो परिचय दिया है—वह 'हस्तामलक' स्तोत्र नाम से प्रसिद्ध होगा। ब्रह्मज्ञान में पूर्णतः प्रतिष्ठित यह बालक चिदानन्द स्वरूप है। केवल प्रारब्धक्षय के लिए ही शरीर धारण कर रखा है।

यह सुन बालक के पिता ने विनत-भाव से प्रणत होकर आचार्य से निवेदन किया—देव, अपनी माता का यह अकेला पुत्र है। वह विचारी पुत्रगत प्राण है। आप जो कुछ कहते हैं सत्य है, पर उसे भी तो सारी बातें बता दूं।

यह कह कर प्रभाकर अपने पुत्र के साथ घर चले आये ओर उन्होंने पत्नी को सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सारी बातें सुन कर जननी बार बार अपने बेटे के मुंह चुमने लगी। उसने बालक से बार-बार आग्रह किया कि एक बार भी वह उसे 'माँ' कह दे, पर लड़का पूर्ववत् चुप हो रहा। तब पुत्र के भावी विरह से माँ अकुलाकर रोने लगी।

दूसरे दिन पत्नी ओर पुत्र के साथ प्रभाकर पुनः आचार्य के चरणों में उपस्थित हुए। ब्राह्मणी आचार्य के चरणों में सिर रखकर आर्त्तनाद करने लगी। उसने कहा—हे यतिवर, आप सर्वसमर्थ हैं। आप मृतक को भी जीवित कर सकते हैं। कृपया मेरे पुत्र को भी प्रकृतिस्थ कर दीजिए। मुझे एक ही पुत्र है, इसके बिना मैं जीवित नहीं रह सकती। मेरी गोद खाली न कराइये। इसे अच्छा कर दीजिए। हे प्रभो, आप की कृपा से सब कुछ संभव है।

ब्राह्मणी का व्याकुल क्रन्दन सुन कर आचार्य आविल हृदय हो उठे। उन्होंने सान्त्वना के स्वर में कहा—माता, आप व्यर्थ शोक न करें। आप इस पुत्र को गृहस्थ नहीं बना सकेंगी। इस बालक के शरीर में एक सिद्ध योगी निवास करते हैं।

ब्राह्मण-दम्पति आचार्य की बातें सुन कर स्तब्ध रह गये। तब आचार्य ने उनकी पूर्वस्मृति जागरित करते हुए कहा—याद कीजिये जब यह बालक दो साल का था, आपलोग इसे लेकर यमुना स्नान करने के लिए गये थे। वहाँ तट पर स्थित एक कुटी में ध्यानस्थ एक योगी के निकट अपने शिशु पुत्र को छोड़ कर आप लोग स्नान करने लगे। इधर खेलते-खेलते शिशु पानी में लुढक कर मर गया। तब मृत पुत्र को गोद में लेकर आप दोनों ने उस योगी के पास जाकर

आर्त्तनाद करना प्रारम्भ किया। इस आर्त्तनाद से योगी के हृदय में करुणा का संचार हुआ और वे योगबल से उस मृत-शिशु के शरीर में प्रवेश कर गये, बालक जी उठा। आप लोग प्रसन्नतापूर्वक घर लौट आये। वे ही सिद्ध योगी इस बालक के शरीर में निवास कर रहे हैं। आप लोग व्यर्थ इन्हें गृहस्थ बनाने की दुश्चेष्टा न करें।

आचार्य की बातें सुनकर ब्राह्मण दम्पत्ति को अतीत की सारी घटना याद हो आई। बालक ने भी उसी समय कहा—माता, आपने मेरा परिचय तो पा ही लिया, अब व्यर्थ मुझे गृहस्थ बनाने की चेष्टा न करें। मुझे यहीं छोड़ कर आप लोग जायें। मैं वर देता हूँ आपको शीघ्र ही एक पुत्र होगा। मेरी कामना व्यर्थ न होगी। आचार्य को प्रणाम कर द्विज-दम्पति भारी मन से घर लौट आये। आचार्य ने शुभ मुहूर्त में उस बालक को संन्यास-धर्म में दीक्षित कर लिया। हस्तामलक के नाम से इस बालक की प्रसिद्धि हुई। आचार्य के प्रधान शिष्यों में हस्तामलक अन्यतम थे। ये ही द्वारका पीठ के प्रथम अध्यक्ष बनाये गये।

श्रीवलि के अनन्तर आचार्य दक्षिण भारत के अन्य तीर्थों की ओर चल पड़े और इसी क्रम में वे मैसूर राज्य के शृङ्गेरी पहुंचे। यह स्थान तुङ्गभद्रा नदी के किनारे स्थित है। शङ्कर को लगा कि तुङ्गभद्रा की कलकल ध्वनि वेद मंत्रों का उच्चारण करती हुई अपने अंचल में मठस्थापना का आमन्त्रण दे रही है। यह वही स्थान था जहाँ बारह साल पूर्व शंकर ने एक विशाल कालसर्प को फण फैलाकर मेढक शावकों की रक्षा करते देखा था। आज उन्हें अपने पुरातन स्वप्न को साकार करने का अवसर मिल गया। उन्होंने अपने शिष्यों को बुलाकर अपना मन्तव्य सुनाया। मठस्थापना की बात सुन कर सभी प्रसन्न हो गये। ऋष्यशृङ्ग के इस प्राचीन आश्रम में शिष्यों के अनुरोध से कई कुटियाँ बनवाई गयीं। धीरे-धीरे वहाँ मन्दिर और मठ तैयार हो गये। आचार्य ने स्वयं श्रीयंत्र की स्थापना कर मन्दिर का प्रतिष्ठा-कार्य सम्पन्न किया। मन्दिर में शारदा की प्रतिष्ठा कर श्रीविद्या के सम्प्रदायानुसार आचार्य ने तांत्रिक पूजा-पद्धति की व्यवस्था कर दी। आचार्य ने शृङ्गेरी को अद्वैतवाद के प्रचुर प्रचार का प्रधान केन्द्र बनाया। कई दृष्टियों से जगत् के आध्यात्मिक इतिहास में शृङ्गेरी मठ की स्थापना एक विशेष महत्त्व की घटना है। यहीं रह कर आचार्य ने प्रस्तुत आत्मानात्मविवेक, आत्मबोध तथा अपरोक्षानुभूति, विवेकचूडामणि, बोधसार, अज्ञान-बोधिनी, दृग्दृश्यविवेक, सर्वदर्शनसिद्धान्त, विवेकवैराग्योद्दीपक आदि आदि अनेकानेक अमूल्य ग्रन्थों की रचना की।

शृङ्गेरी मठ में दुखद दुर्दशा से जर्जरित, संशय और अविश्वास से पीड़ित,

आकांक्षा और अहंकार से अभिभूत आर्त्त भक्तों की भीड़ लगी रहती थी। इन्हीं भक्तों में आचार्य का एक अनन्य भक्त 'गिरि' था। 'जस नाम तस गुण'। वह पक्का जड़ था, पर था शंकर का एकान्त भक्त। आचार्य जब अपने सुयोग्य शिष्यों को अध्यात्म शास्त्र पढ़ाते रहते थे, तब गिरि श्रद्धावनत होकर ध्यानपूर्वक गुरु की व्याख्या प्रतिदिन सुना करता था। इस नियम में कभी व्यतिक्रम नहीं हुआ। एक दिन निकटवर्ती नदी में गिरि आचार्य के वस्त्रों को धो रहा था। इधर आचार्य के अध्यापन का समय आ गया। शिष्यगण एकत्र हो गये। शान्ति पाठ के लिए उन्हें उद्यत देख कर आचार्य ने कहा—'क्षणभर रुको, गिरि अभी आता होगा।' कुछ देर प्रतीक्षा करने पर भी गिरि नहीं लौटा तब पद्मपाद ने आचार्य से निवेदन किया—'प्रभो, क्या गिरि आप की शास्त्र-व्याख्या समझ पाता है ?'

आचार्य ने कहा—'नहीं, गिरि कुछ नहीं समझता यह सत्य है, पर, वह श्रद्धा के साथ एकाग्र होकर सब कुछ सुनता है।'

उधर नदी में कपड़े धोते समय उसे अनुभव हुआ कि गुरुदेव उस पर परम प्रसन्न होकर सामने खड़े आशीर्वाद दे रहे हैं। उसका अन्तःकरण एक दिव्य प्रकाश से उद्‌भासित हो उठा। उसे ऐसा लगा मानो वह सारी विद्याओं का अनायास अधिकारी बन गया है। उसका सम्पूर्ण अन्तःकरण अनिर्वचनीय आनन्द से अभिभूत हो उठा। वस्त्र धोकर लौटते समय उसे ऐसा लगा कि उसके सारे चिन्तन छन्दोबद्ध होकर कविता के रूप में अभिव्यक्त हो रहे हैं। भावाविष्ट की तरह अभिभूत सा वह गुरु के चरणों में उपस्थित होकर उनकी स्तुति करने लगा। उसके मुख से अध्यात्मविषयक विशुद्ध पद्यमयी स्तुति सुन कर शिष्यों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा—जिसे वे वज्र मूर्ख समझ कर निरादर कर रहे थे, वही सच्चे अर्थ में अध्यात्मविद्या का पारगामी पण्डित निकल पड़ा। उसके मुख से स्तुति-वाणी 'तोटक' छन्द में निकल रही थी। अतः आचार्य ने उसका नाम 'तोटकाचार्य' ही रख दिया। आचार्य के सुविज्ञ शिष्यों में तोटकाचार्य का अन्यतम स्थान है। जब ज्योतिर्मठ की स्थापना हुई तब आचार्य ने इस मठ के अध्यक्ष पद का भार इन्हीं पर सौंप दिया।

शृङ्गेरी के शान्त वातावरण में वार्तिक-रचना का अच्छा अवसर था। शंकर ने एक दिन सुरेश्वराचार्य (मण्डनमिश्र) को बुला कर कहा—'वेदव्यास ने कुमारिल भट्ट के द्वारा वार्त्तिक रचना का निर्देश किया था। कुमारिल भट्ट ने तुम्हारे द्वारा वार्त्तिक-रचना कराने की इच्छा प्रकट की थी। मेरी भी यही इच्छा है कि तुम ब्रह्मसूत्रभाष्य के वार्त्तिक की रचना करो।' गुरुदेव के आदेशानुसार सुरेश्वराचार्य गंभीर एकाग्रता के साथ वार्त्तिक-रचना में प्रवृत्त हुए। क्रमशः ये बातें शिष्यों में

भी प्रचारित हो गयीं। शिष्यों ने एक झमेला खड़ा कर किया। सुरेश्वर पूर्वाश्रम में गृहस्थ थे। कर्ममीमांसा में विशेष दक्ष थे। उन्होंने संकटापन्न स्थिति में संन्यास ग्रहण किया है। ऐसे अनेक निन्दात्मक वचन कह कर शिष्यों ने गुरु के प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं किया। इनकी सम्मति में पद्मपाद ही इस कार्य के पूर्ण अधिकारी थे। आचार्य ने जब ऐसी विरुद्ध बातें सुनी तो सुरेश्वराचार्य को बुलाकर एकान्त में कहा—'बेटा, तुम अब वार्तिक की रचना मत करो। अन्य लोगों की ऐसी ही इच्छा है। अब तुम पहले अद्वैत सिद्धान्त के विषय में तत्वज्ञानपूर्ण एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखो।' फिर पद्मपाद को बुलाकर कहा—देखो, सबों की इच्छा है कि तुम सूत्रभाष्य के ऊपर वार्तिक लिखो; पर, मेरी इच्छा है कि तुम सूत्रभाष्य की टीका लिखो। आचार्य की आज्ञा से पद्मपाद टीका रचना में प्रवृत्त हुए। उधर सुरेश्वराचार्य ने 'नैष्कर्म्यसिद्धि' नामक गंभीर तात्पर्य तथा युक्तिपूर्ण ब्रह्मात्मविज्ञान के सम्बन्ध में एक प्रामाणिक दार्शनिक ग्रन्थ की रचना कर गुरुदेव को समर्पित कर दिया। ग्रंथ का आद्यन्त पढ़ कर आचार्य ने कहा—मैं प्रसन्न हूं, तुम इसी प्रकार 'ब्रह्मसिद्धि' और 'इष्टसिद्धि' नामक दो और ग्रन्थ लिखो। उनके जाने पर अन्य शिष्यों को बुला कर आचार्य ने 'नैष्कर्म्यसिद्धि' ग्रंथ दिखलाया। सबों ने मुक्तकण्ठ से उस ग्रन्थ की प्रशंसा की। मण्डन की वार्तिक रचना बन्द हो जाने की घटना का पूरा पता जब पद्मपाद को चला तो वे बहुत दुखी हुए। आचार्य की इच्छा में बाधा डालने के कारण उन्होंने अपने को महान् अपराधी माना। पश्चात्ताप से उनका हृदय भर गया। अब वे उसके प्रायश्चित्तस्वरूप तीर्थाटन का निश्चय किया और उन्होंने सूत्रभाष्य पर टीका लिख कर गुरु चरणों में समर्पित कर दिया। गुरुदेव उसे पढ़ कर प्रसन्न हुए तथा उन्होंने उसका नाम 'विजय डिण्डिम' रख दिया। जब पद्मपाद ने तीर्थाटन का अपना निश्चय आचार्य को सुनाया तो पहले वे उन्हें समझा बुझाकर रोकना चाहा, पर शिष्य का दृढ़ निश्चय जान कर अन्त में उन्होंने अनुमति दे दी।

## मुमूर्षु जननी का अन्तिम दर्शन

एक दिन प्रातःकाल आचार्य अपने शिष्यों के बीच शास्त्र-व्याख्या कर रहे थे। सहसा उन्हें अपनी जननी की याद आ गयी और वे चंचल हो उठे। उन्हें लगा कि उनकी माता अब इस नश्वर शरीर को त्यागने वाली ही है। वे योगबल से झट माँ के निकट पहुंच गये। माँ मृत्यु-शय्या पर पड़ी थी। लगता था कि उनके प्राण अपने पुत्र को अन्तिम बार स्नेहसिक्त करने के लिए ही अटके हुए हैं। पुत्र को देख कर माता का हृदय प्रसन्नता से खिल उठा। उन्होंने कहा—'तुम

प्रसन्न तो हो, देखो,'अब मेरे महाप्रयाण का आयोजन करो।' शङ्कर ने निर्गुण ब्रह्म का उपदेश दिया। पर माता ने कहा—मेरी बुद्धि इसे ग्रहण नहीं कर पाती। तब शङ्कर ने आर्त्तभाव से भगवान् विष्णु की स्तुति की। उस सौम्य मूर्त्ति का ध्यान करते-करते माता ने अपने प्राण छोड़ दिये।

शंकर ने अपने जाति-भाइयों से माता के दाह-संस्कार में सहायता चाही, पर कुटुम्बियों ने उत्तेजित होकर कहा—तुम पाखण्डी हो, शठ और धूर्त हो, संन्यासी होने के बाद माता का दाह-संस्कार करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। तुम्हें अब इस सम्पत्ति का अधिकार भी नहीं मिलेगा। शंकर ने विनीत स्वर में कहा—'माता की इच्छानुसार मैं दाहसंस्कार करूंगा और सारी सम्पत्ति माता की वृद्धा सेविका और गरीब पड़ोसी को दूंगा। यही मेरा अन्तिम संकल्प है।' यह सुन वे सब शान्त हो गये, पर जब उन लोगों ने सहायता देने से अपना मुँह मोड़ ही लिया। तब असहाय शंकर ने स्व० माता की सेविका की सहायता से कुछ लकड़ियाँ जुटा कर आवासस्थल पर ही माता का दाह-संस्कार कर दिया और अपने दायादों को इस हृदय-हीनता व्यवहार के लिए शाप दे दिया। तभी से इन ब्राह्मणों के घर के पास ही श्मशान भूमि बनती है। अभी भी केरल में शवसंस्कार ( श्मशान ) आवास भूमि पर ही होता है।

## केरल नरेश राजशेखर से भेंट

आचार्य योग-सिद्ध ब्रह्मर्षि थे। वे आकाशमार्ग से ही माता के समीप आये और उन्होंने अतीन्द्रिय शक्ति से माता को अन्तिम क्षण में इष्ट दर्शन कराया। ये बातें सर्वत्र फैल गयीं। यह समाचार जब केरल के राजा राजशेखर ने भी सुना तो वे आचार्य से मिलने आये। जाति-भाइयों द्वारा किये गये कुकृत्य के सम्बन्ध में जब उन्हें पता चला तो वे क्रोधित हो उठे। किन्तु आचार्य ने उन सभी ब्राह्मणों को क्षमा कर देने को कहा। शंकर ने राजा से पूछा—'आजकल आपकी साहित्य-चर्चा कैसी चल रही है।' राजा ने लम्बी साँस लेते हुए कहा—'देव, जिन तीन नाटकों को पढ़ कर मैंने आपको सुनाया था, दुर्योग वश वे अग्नि में भस्मीभूत हो गये। उसके बाद तो कुछ उत्साह ही नहीं रहा। राजा की मनोवेदना समझते हुए आचार्य ने कहा—आपके सुनाये वे तीनों नाटक मुझे अभी भी स्मरण है। यदि आप चाहें तो मुझसे उनका पुनरुद्धार कर सकते हैं। राजाज्ञा से तुरन्त लिपिक की नियुक्ति हुई और आचार्य लिखाने लगे। थोड़े ही दिनों में तीनों नाटक तैयार हो गये। ग्रन्थ पढ़ कर राजा विस्मयविमुग्ध हो गये। इसी समय आचार्य ने केरल के समाज-संस्कार पर एक संक्षिप्त धर्मसंहिता लिखी। राजशेखर ने उसका नाम 'शंकर-स्मृति' रखा।

## अद्वैत मत का प्रचार

आचार्य के जीवन में ममता का जो एकमात्र धागा था वह भी टूट गया। माता के निधन के बाद वे पूरे वीतराग हो गये। अद्वैत मत के प्रचार का उनका संकल्प दृढ़ था। तदर्थ अपने प्रमुख शिष्यों के साथ सर्वप्रथम उन्होंने 'सेतुबन्ध' की यात्रा की मार्ग में तुलाभवानी नामक तीर्थ में आकर आचार्य ने भवानी, महालक्ष्मी और सरस्वती के उपासकों में सत्यधर्म की व्याख्या द्वारा उनके शाक्त मतों का संस्कार किया।

इसके उपरान्त आचार्य रामेश्वरम् पहुँचे। यहाँ उन्होंने शैवमत का संस्कार साधन किया। इसके बाद श्रीरङ्गम्, सुब्रह्मण्यम् तथा शुभगणपुरम् आदि तीर्थ स्थानों का दर्शन करते हुए 'कांचीपुरम्' पहुँचे। यहाँ तान्त्रिकों का साम्राज्य था। अतः यहाँ उन्होंने कामाक्षी देवी के मंत्र की प्रतिष्ठा करके श्रुतिस्मृति अनुमोदित पूजा का निर्देश दिया। इसके अनन्तर सशिष्य आचार्य ताम्रपर्णी, वेंकटाचल और विदर्भ होकर कर्नाटक के उज्जयिनी में पधारे। कर्नाटक देश में कापालिकों का सरदार क्रकच रहता था, जिसे परास्त करने के लिए शंकर वहाँ पहुंचे थे। देखते ही क्रकच ने आचार्य को अपशब्द कहना प्रारम्भ कर दिया और अपने ही तंत्रबल से उसने संहारभैरव का आह्वान किया। दशो दिशाओं को प्रकम्पित करता हुआ—संहार भैरव वहां आविर्भूत हो गया। क्रकच ने नतजानु होकर शंकर के प्राण-नाश की प्रार्थना की। परन्तु संहार भैरव ने शङ्कर को अपना ही रूप बतलाया और उसके पुनः उत्तेजित होने पर उस दुष्ट क्रकच को ही मार डाला।

कापालिकों के उद्धार-साधन के अनन्तर आचार्य कर्नाटक के मल्लपुर, मरुन्थ नगर आदि अनेक स्थानों से होते हुए चार्वाक, सोगत, क्षपणक, जैन, बौद्ध, कुक्कुर-सेवक, विष्वक्सेन उपासक तथा कामदेवमतावलम्बियों का संस्कार करके क्रमशः आन्ध्रप्रदेश की ओर अग्रसर हुए। गोकर्ण क्षेत्र में नीलकंठ नामक एक द्वैतवादी शैव विद्वान् रहते थे। इनके साथ आचार्य का तुमुल शास्त्रार्थ हुआ। अन्ततः परास्त होकर नीलकंठ ने अपना शैवभाष्य फेंक कर अपनी भक्त-मण्डली के साथ शङ्कर के अनुचर बन गये। आन्ध्रप्रदेश के अनेक स्थानों का भ्रमण कर आचार्य ने अद्वैत ब्रह्मात्मविज्ञान का प्रचार किया। इसके बाद आचार्य कलिङ्गदेशवासियों के संस्कार-साधन में प्रवृत्त हुए। कलिङ्ग राजा ने अपने मंत्रियों के साथ इनका स्वागत किया। वहाँ से आचार्य पुरी धाम पधार कर दर्शनार्थ श्री-मन्दिर पहुंचे। मन्दिर में कोई विग्रह प्रतिष्ठित नहीं था। शालग्राम शिला पर ही भगवान् की पूजा होती थी। वहाँ कुछ दिन रुक कर आचार्य ने

सर्वप्रथम रत्नपेटिका का उद्धार किया। पुनः एक शुभ मुहूर्त में यथाविधि अभिषेक एवं पूजा समाप्त कर आचार्य ने सूर्याग्नि सदृश जगन्नाथ के दिव्य मूर्ति की मन्दिर में प्रतिष्ठा की।

यहाँ से आचार्य मगध राज्य के तीर्थाटन करते हुए द्वारिका धाम पहुँचे। यहाँ पञ्चरात्रों का प्रधान अड्डा था। आचार्य की प्रखर प्रतिभा के सम्मुख उन्हें भी नतमस्तक होना पड़ा। यहाँ से चल कर वे उज्जयिनी पहुँचे। उज्जयिनी में भेदाभेदवादी प्रकाण्ड विद्वान् भास्कर से विचार-विमर्श प्रारम्भ हुआ। वादानुवाद क्रमशः घोर वितण्डा और जटिल तर्क में परिणत हो गया। दोनों ही एक दूसरे के अखण्डनीय तर्कों का खण्डन करने लगे। विपुलशास्त्रार्थ के बाद भास्कर की प्रभा क्षीण पड़ गयी। अन्ततः उन्होने भी अद्वैतवाद को ही उपनिषद्-प्रतिपाद्य सिद्धान्त मान लिया।

द्वारिकापुरी से आचार्य क्रमशः कोंकण, गुजरात, पुष्कर तीर्थ आदि स्थानों में होते हुए सिन्धु प्रदेश आए। यहाँ के विभिन्न मतावलम्बी साधक आचार्य के श्रीमुख से वेदान्त की व्याख्या सुन कर अद्वैतमत में श्रद्धान्वित हुए। सिन्धु प्रदेश से आचार्य शङ्कर अनेक तीर्थों, ग्रामों नगरों तथा जनपदों मे वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए गान्धारदेश पहुंचे। उन दिनों यहाँ बौद्धधर्म का बोल-बाला था। बौद्ध पण्डितों को शास्त्रार्थ में पराजित कर आचार्य ने यहां भी वैदिक धर्म की स्थापना की। इसके बाद बाह्लीक प्रदेश में भी जैनियों तथा बौद्धों को पराजित कर आचार्य ने वैदिक मत का प्रचार किया। तदनन्तर काम्बोज, दरद और मरुस्थल आदि देशों के विभिन्न मतावलम्बियों को शास्त्र-विचार में पराजित करके आचार्य उच्च पर्वतश्रेणियों को पार कर काश्मीर में प्रविष्ट हुए।

## काश्मीर में भगवती शारदा का दर्शन

काश्मीर में प्रवेश कर सर्वप्रथम आचार्य शारदापीठ पधारे। शारदापीठ में वाग्देवी सरस्वती का एक प्रसिद्ध देवालय है, जहाँ उस समय सर्वज्ञ-पीठ नाम से एक पीठ स्थापित था। उस पीठ पर उपविष्ट होने की आकांक्षा से यदि कोई पण्डित वहाँ जाते थे तो उन्हें शारदा-मन्दिर के चारों द्वारों पर अवस्थित सभी सम्प्रदाय के पण्डितों को शास्त्रार्थ में परास्त करना होता था।

मन्दिर का दक्षिण दरवाजा सदा बन्द ही रहता था। आचार्य अपने कुछ शिष्यों के साथ दक्षिण द्वार खोल कर ज्यों ही मन्दिर में प्रवेश करने लगे, चारों ओर से पण्डितों की मण्डली उन पर टूट पड़ी और गरजने लगी—'यतिवर, क्या आप सर्वज्ञ हैं? अपनी सर्वज्ञता का परिचय देकर ही दक्षिण द्वार से मन्दिर में प्रवेश कीजिए।' शंकर ने विभिन्न दर्शनों के जटिल प्रश्नों का उत्तर देकर

अपने सर्वज्ञ होने के दावे को सप्रमाण सिद्ध कर दिया। भीतर जाकर ज्योंहीं वे सर्वज्ञ पीठ पर अधिरोहण करने लगे, शारदा की भावना आकाश वाणीरूप में प्रस्फुटित हो उठी—'इस पीठ पर अधिरोहण करने के लिए सर्वज्ञता के साथ पवित्रता भी अपेक्षित है यतिवर !, संन्यासी होकर भी काम-कला सीखना, शरीरान्तर से कामिनियों का उपभोग करना क्या गर्हित कर्म नहीं है ? भला ऐसा व्यक्ति पावन चरित होने का अधिकारी कैसे हो सकता' शङ्कर ने उत्तर दिया—'अम्बे, शरीरान्तर में किये गये पाप क्या तद्भिन्न शरीर को स्पर्श कर सकता है ?' शङ्कर की इस युक्ति के सामने वाग्देवता स्तब्ध रह गयीं। उन्होंने कहा—'वत्स शंकर ! मैं प्रसन्न हूं, केवल तुम्हीं इस पीठ के योग्य पात्र हो। प्रसन्न चित्त से सर्वज्ञ पीठ पर आरोहण करो।' देववाणी से मन्दिर कम्पित हो उठा, लोग स्तम्भित हो गये। आचार्य धीरे-धीरे शारदापीठ पर चढ़ कर सुखासन में उपविष्ट हुए। कुछ दिन उस पीठस्थान में रह कर उन्होंने सर्वसाधारण में अद्वैत ब्रह्मतत्त्व की भावना जाग्रत की।

## ब्राह्मण वेष में आचार्य गौडपाद का दर्शन

एकदा आचार्य गौड़देश अर्थात् आधुनिक उत्तरी बंगाल पहुंचे। उस समय गौड़देश में मीमांसक मुरारि मिश्र और धर्मगुप्त के पाण्डित्य का विशेष प्रभाव था। पर्याप्त शास्त्रीय विचार के बाद मुरारि मिश्र भी आचार्य के शिष्य बन गये। यहां एक दिन सन्ध्यासमय आचार्य गंगातट पर भावाविष्ट होकर बैठे थे। सहसा उन्होंने देखा एक दिव्य पुरुष जटाजाल-मण्डित सामने से आ रहा है। आचार्य ने उठ कर प्रणामपुरस्सर उस पुरुष से आसन ग्रहण करने की प्रार्थना की। उस महापुरुष ने प्रसन्न मुद्रा में कहा—'वत्स शंकर ! जिस परमतत्त्व की शिक्षा तुम्हें मेरे प्रिय शिष्य गोविन्दपाद ने दी है, उसमें तुम सम्यक् प्रतिष्ठित हो गये हो।' आचार्य ने कहा 'हे परम गुरो, आपकी कृपादृष्टि जब मुझ पर है तो मुझे सब कुछ प्राप्त हो गये।' आचार्य के विनीत वचनों से प्रसन्न होकर आचार्य गौड़पाद ने कहा—यतिवर, तुमने ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों पर भाष्यों की रचना की है और मेरे द्वारा लिखित सांख्य-कारिका पर जो तुमने भाष्य लिखा है उसमें मेरा जो अभिप्राय था उसकी अभिव्यक्ति कर तुमने मेरे हृदय को अपने भाष्य में रख दिया है। सचमुच में तुम जगद्गुरु हो, तुम्हारा भाष्य इस पृथ्वी तल पर अलौकिक प्रभासम्पन्न होकर जगत् का वास्तविक मंगल करेगा।

आचार्य गौड़पाद के दर्शनलाभ के बाद ही शंकर के अन्तर में अज्ञान भावान्तर उत्पन्न हो उठा। वे सर्वदा ध्यानमग्न ही रहने लगे। इसे देख कर शिष्यगण विशेष चिन्तित हुए। आचार्य की आयु भी ३२ वर्ष की हो चुकी थी।

## महाप्रयाण

एक दिन आचार्य शिष्यों को विना कहे ही चुपचाप बदरीनाथ चले गये। कुछ दिनों तक वहाँ रह कर दत्तात्रेय के दर्शनार्थ उनके आश्रम गये। दत्तात्रेय से आशीर्वाद लेकर वे कैलास पर्वत पर स्थूल शरीर छोड़ कर सूक्ष्म शरीर में लीन हो गये। अधिकांश संन्यासियों के बीच यही वृत्तान्त प्रमाणिक एवं श्रद्धेय है। शृङ्गेरी पीठानुसारी ग्रन्थों में भी यही वृत्तान्त उपलब्ध है। केरल तथा कामकोटि की परम्परा इससे बिल्कुल भिन्न है। माधवाचार्य के अनुसार कुछ और तथा स्वामी अपूर्वानन्द की दृष्टि में कुछ और। ऐसी विषम परिस्थिति में इस सम्बन्ध में निश्चयात्मक ढंग से कुछ कहा नहीं जा सकता। पर इतना बहुमत से निश्चित है कि आचार्य शङ्कर ने ३२ वर्ष की आयु में इस लोक को छोड़ दिया। अवसान तिथि के सम्बन्ध में भी मतभिन्नतायें हैं। कुछ लोग उनका अवसान वैशाख शुक्ल १० को, कुछ वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को तो कुछ कार्तिक शुक्ल एकादशी को मानते हैं।

## उपसंहार : संस्तुति

आचार्य ने अपने विजय अभियान के सन्दर्भ में शृंगेरीमठ के अतिरिक्त जगन्नाथ पुरी में गोवर्द्धनमठ, द्वारिका में शारदामठ तथा बदरिकाश्रम में ज्योतिर्मठ की स्थापना की। ये सभी मठ वैदिक संस्कृति के केन्द्र, वर्णाश्रमधर्म के निकेतन तथा भारतीय विद्या के जीते-जागते केन्द्र हैं। इन मठों को शंकराचार्य ने चारो दिशाओं में स्थापित कर समग्र भारत को एक सूत्र में बाँध दिया है। इतना ही नहीं उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि देवतात्मा हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और योगेश्वर कृष्ण की पदरेणुरंजिता द्वारिका पुरी से मुक्तिधाम जगन्नाथ पुरी तक समग्र राष्ट्र एक संस्कृति में पिरोया है।

इतनी कम अवस्था में उन्होंने जितना ज्ञानार्जन किया, जितने व्यक्तियों को अपना शिष्य बनाया, जितने तीर्थ-क्षेत्रों की परिक्रमा की, जितने मठ स्थापित किये तथा जितने गूढ़ विषयों पर भाष्य लिखे—यह सब सोच कर आश्चर्य-चकित होना पड़ता है।

आचार्य के ग्रन्थों का निर्णय करना भी एक विषम पहेली है। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि आद्य शंकराचार्य ने कितने और किन-किन ग्रन्थों की रचना की है। शंकराचार्य की कृति के रूप में २०० सौ से भी अधिक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। आद्य शंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित पीठों के सभी आचार्य शंकराचार्य ही कहलाते हैं। इन विभिन्न शंकरों की रचनाओं का यथावत् पार्थक्य करना नितान्त दुरूह है।

जो कुछ भी हो, इतना निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि आद्य शंकराचार्य रचित प्रमुख ग्रन्थों में ब्रह्मसूत्र भाष्य, एकादश उपनिषद्-भाष्य तथा गीता-भाष्य सर्वमान्य हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने स्तोत्रग्रन्थ तथा निगूढ़ वेदान्ततत्त्व को सुबोध बनाने के लिये प्रकरण ग्रंथ लिखे। इनके मोहमुद्गर के ज्ञान और प्रार्थना के ललित लयात्मक पद किसी भी गीतकार कवि के पदों को अपने शब्द-शब्द से पराजित करने में आज तक पर्याप्त है।

जगद्गुरु शङ्कराचार्य की महत्ता से अभिभूत होकर बड़े-बड़े दार्शनिक पण्डितों ने उन्हें अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित किये हैं। वाचस्पति मिश्र ने उनकी वाणी को उसी प्रकार पवित्र बतलाया है, जिस प्रकार भगवती भागीरथी का जल जलसामान्य को पवित्र कर देता है। मधुसूदन सरस्वती ने उन्हें महाभारत-प्रणेता व्यास से भी महान् माना है। उनका कथन है कि व्यास अपनी सूत्ररचना द्वारा भी जिस वेदान्त को बोधगम्य नहीं कर सके उसे शंकराचार्य ने सूत्र के बिना ही सुगम बना दिया है। बंगीय विद्वान् प्रज्ञानन्द सरस्वती का कहना है कि शंकराचार्य का भाष्य अगाध सिन्धु के समान गंभीर, अटल पर्वत के समान अधृष्य, सूर्य के समान प्रोज्ज्वल और चन्द्रमा के समान सुशीतल है। विचार-तीक्ष्णता में शंकर साक्षात् सरस्वती के पुत्र, दार्शनिक क्षेत्र के सार्वभौम सम्राट्, चिन्तन-राज्य के चक्रवर्ती और मनीषा के महाराजाधिराज हैं।

## आभारप्रदर्शन

प्रस्तुत भूमिका-लेखन में जिनके ग्रन्थों से सहायता ली गयी है, उनमें स्वामी अपूर्वानन्दजी, स्वा० राघवाचार्यजी, स्वा० आनन्दगिरिजी, आचार्य बलदेवजी उपाध्याय, डॉ० वचनदेवजी, श्री सुरेन्द्रनाथजी भौतिक तथा परिशिष्ट लेखन में डॉ० रमेशचन्द्रजी शुक्ल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। मैं इन कर्मठ विद्वानों का अतिशय आभारी हूँ। इति शुभम्।

"सन्त हंस-गुण गहहिं पय परिहरि वारि-विकार"

महाशिवरात्री
वि० सं० २०२९

विनयावनत
—जगदीशचन्द्र